संस्कृत नाटकों में प्रतिबिम्बित समाज एवं संस्कृति

(प्रारम्भ से सातवी शताब्दी ई० तक)

Society and Cultural Life as Reflected in Early Sanskrit Dramas

(From earliest times to 7th century A. D.)

डी० फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

अनुसंधान कर्त्री
श्रीमती कनक सिंह

निर्देशक
डा० जय नारायण
रीडर, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

1992

प्राक्कथन

संस्कृत साहित्य प्राचीन भारत का अत्यन्त समृद्ध साहित्य है जिसमें इस देश का प्राचीन ज्ञान भंडार निहित है। इस साहित्य के अन्तर्गत वैदिक और लौकिक दो प्रकार के भाषा गत भेद किये जाते हैं। लौकिक संस्कृत साहित्य के नाटकों को आधार बनाकर प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। पाश्चात्य विद्वानों सिल्वाँ लेवी वान श्रेडर, पिशेल, एच0 हर्टेल, एच0 ल्यूडर्स, स्टे0 क्रोनो और ए0 वेबर ए0वी0 कीथ आदि विद्वानों ने नाटकों का अध्ययन किया है और उनकी विशिष्ट रचनाओं का आज भी सम्मान है। किन्तु अधिकांश पाश्चात्य विद्वान ने संस्कृत नाटकों के उद्भव के प्रश्न पर ही अपना विशेष ध्यान केन्द्रित किया है, संस्कृत नाटकों के सांस्कृतिक तथ्यों का क्रमबद्ध और व्यवस्थित रूप से अध्ययन नहीं किया गया है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में संस्कृत नाटकों के आधार पर सामाजिक, आर्थि धार्मिक और राजनीतिक जीवन पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। संस्कृत नाटक, शिल्प विद्या और कला से समन्वित होते थे। समाज के सभी वर्गों के लोगों को नाटक देखने का अधिकार था। इसीलिए नाटक को सार्ववर्णिक वेद कहा गया है।

सबसे प्राचीन उपलब्ध नाटक भास-कृत है। भास का समय प्रथम शताब्दी ईसवी प्राय: माना जाता है। भास के अतिरिक्त जिन अन्य नाटककारों की रचनाओं को इस अध्ययन का प्रमुख आधार बनाया गया है उनमें, अश्वघोष, कालिदास, शूद्रक, विशाखदत्त, सम्राट हर्ष और भवभूति हैं।

संस्कृत नाटकों में मुख्यत: समाज के संभ्रान्त वर्ग के जीवन का निरूपण मिलता है। राजा, राज-परिवार, राज-शासन से सम्बन्धित मंत्री, सचिव, सेनापति, न्यायाधीश, सामन्त, सैनिक आदि के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। नाटकों में में जहाँ राजकीय जीवन के विषय में विस्तृत विवरण, मिलते हैं, वहीं जन-सामान्य के कष्टों, दारिद्र्य, सामाजिक जीवन की अनेक विशेषताओं, आर्थिक तथा धार्मिक जीवन से सम्बन्धित पक्षों की भी जानकारी प्राप्त होती है। इस प्रकार भारतीय

संस्कृति के अध्ययन की दृष्टि से नाटकों का महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में नवीन तथ्यों के खोजने के साथ -साथ ज्ञात तथ्यों की नये सिरे से व्याख्या करने का प्रयास किया गया है। सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास के अनुसंधान के क्षेत्र में जो अर्वाचीन मान्यताएँ और सिद्धान्त विद्वानों द्वारा प्रतिपादित किए गए हैं उनको ध्यान में रखकर इस शोध प्रबन्ध की रूप-रेखा निर्धारित करने की चेष्टा की गयी है। नाटकों का प्राथमिक स्रोत के रूप में उपयोग किया गया है। गौण स्रोत के रूप में समकालीन अन्य साहित्यिक साक्ष्यों का यथा-संभव उपयोग किया गया है। पुरातात्त्विक साक्ष्यों में समकालिक अभिलेखों के साथ-साथ सिक्कों, मूर्तियों स्मारकों और उत्खनन से प्राप्त साक्ष्यों का भी यथासंभव उपयोग किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से पाँच अध्यायों में विभाजित है। प्रथम अध्याय परिचयात्मक है जिसमें अनुसंधान के प्रारूप का निरूपण किया गया है। शोध-सामग्री एवं तथ्य-संकलन और शोध की विधि की इसमें विवेचना की गयी है। द्वितीय अध्याय सामाजिक जीवन से सम्बन्धित है। प्रथम शताब्दी ईसवी से लेकर सातवीं शताब्दी ईसवी के मध्य प्राचीन भारतीय समाज में जो परिवर्तन हुए उनको इस अध्याय में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। तृतीय अध्याय आर्थिक जीवन से सम्बन्धित है। इस अध्याय में कृषि-पशुपालन शिल्प और वाणिज्य तथा व्यापार से सम्बन्धित तथ्यों को प्रस्तुत किया गया है। चतुर्थ अध्याय धार्मिक जीवन से सम्बन्धित है। धार्मिक -जीवन की जो झलक नाटकों में मिलती है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि वैष्णव एवं शैव धर्म विशेष रूप से लोकप्रिय थे, किन्तु बौद्ध, जैन आदि अन्य धर्मों के साथ -साथ लोक धर्म, व्रत, उपवास, शकुन आदि के विषय में भी जानकारी प्राप्त होती है। पाँचवें और अन्तिम अध्याय में राज्य और शासन-व्यवस्था का परिचय प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को तैयार करने में जिन पुस्तकालयों का उपयोग किया है, उनमें प्राचीन इतिहास के विभागीय पुस्तकालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के केन्द्रीय पुस्तकालय, गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ के पुस्तकालय, इलाहाबाद

संग्रहालय के पुस्तकालय, केन्द्रीय पुस्तकालय और हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के पुस्तकालय प्रमुख हैं। इन पुस्तकालयों के अधिकारियों और कर्मचारियों ने समय-समय पर मेरी जो सहायता की है, उसके लिए मैं उन सबको धन्यवाद देती हूँ।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग के भूतपूर्व अध्यक्षों प्रो० जी०सी० पाण्डे, प्रो० जे०एस० नेगी, प्रो० बी०एन०एस० याद प्रो० यू०एन०राय, प्रो० एस०एन० राय तथा वर्तमान अध्यक्ष प्रो० एस०सी० भट्टाचार्य, प्रो० बी०डी० मिश्र, डा० आर० के० द्विवेदी, श्री बी०बी० मिश्र, श्री डी० मण्डल, डा० गीता सिंह, डा० ओ०पी० यादव, डा० आर०पी० त्रिपाठी, डा० जी०के० रा डा० जे०एन० पाल, श्रीमती डा० रंजना बाजपेयी, श्री ओ०पी०श्रीवास्तव, डा० शर्व ओझा, डा० पुष्पा तिवारी, डा० सी०डी० पाण्डेय एवं डा० डी०पी० दूबे आदि गुरुजनों एवं अग्रजों के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जिनके आशीर्वाद, प्रोत्साहन एवं मार्ग दर्शन से प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का लेखन कार्य सम्पन्न हो सका। परम श्रद्धेय गुरुजी डा० जय नारायण पाण्डेय , रीडर प्राचीन इतिहास , संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग जिनके असीम स्नेह सफल निर्देशन के फलस्वरूप शोध प्रबन्ध पूरा हो सका को सादर नमन करती हूँ जिनके प्रति किसी प्रकार की कृतज्ञता ज्ञापन परम स्नेह के गौरव का घातक होगा। मैं उन विद्वानों की कृतज्ञ हूँ, जिनकी पुस्तकों का शोध लेखन के समय अनुशीलन किया।

डा० जयनारायण पाण्डेय की धर्म-पत्नी श्रीमती सुभद्रा पाण्डेय के प्रति भी आभार प्रकट करती हूँ जिनके स्नेह तथा सहयोग के फलस्वरूप मेरा शोध प्रबन्ध पूरा हो सका । इसके अतिरिक्त मेरी परमप्रिय मित्र श्रीमती कृपा त्रिपाठी, धर्मपत्नी श्री सुरेन्द्रनाथ त्रिपाठी की भी विशेष कृतज्ञ हूँ क्योंकि उन्होंने और उनके परिवार के समस्त सदस्यों ने शोध प्रबन्ध पूरा करने में असीम सहयोग प्रदान किया।

मैं अपने परिवार के समस्त सदस्यों के प्रति भी विशेष आभारी हूँ जिन्होंने शोध प्रबन्ध पूरा करने में पूर्ण सहयोग प्रदान किया।

विशेष रूप से मैं अपने माता-पिता और पति की आभारी हूँ, जिनके अकथनीय सहयोग के फलस्वरूप मेरा शोध-प्रबन्ध पूरा हो सका।

सुन्दर टंकण के लिए श्री यज्ञ नारायण यादव का विशेष आभार मानती हूँ, जिनके सहयोग से प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध अत्यन्त अल्प समय में टंकित हो सका।

कनक सिंह

सोमवार

14 दिसम्बर, 1992

(कनक सिंह)

विषय सूची

पृष्ठ

प्रथम अध्याय

शोध का प्रारूप

अनुसंधान का प्रारम्भ

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। प्रत्येक देश के साहित्य में उसकी सामाजिक विशेषताएं, परम्पराएं, रूढ़ियाँ, और लोक प्रथाएं समाहित होती हैं। इसके अतिरिक्त आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक जीवन से सम्बन्धित गतिविधियों का भी प्रभाव पड़ता है। प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य संस्कृत नाटकों के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक और सांस्कृतिक अध्ययन करना है। संस्कृत नाटकों में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक जीवन की महत्त्वपूर्ण झलक मिलती है। नाटकों में मानव जीवन की अधिकांश घटनाओं का चित्रण मिलता है। भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में इस बात का उल्लेख किया है कि नाटकों में सभी प्रकार के ज्ञान शिल्प, विद्या और कला का उल्लेख प्राप्त होता है।[1] नाटक का इस दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण स्थान है कि ईसवी सन् की प्रारम्भिक शताब्दियों से स्त्री और शूद्रों को वेदों के पढ़ने का अधिकार नहीं था किन्तु नाटक देखने के लिए सबको अधिकार था। इसलिए भरत मुनि ने नाटक को सार्ववर्णिक वेद कहा है।[2] संस्कृत नाटकों में अनेक विषयों का समावेश होने से उनका क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में उल्लेख मिलता है कि उत्तम, मध्यम और अधम मनुष्य के कर्म का प्रदर्शन कर हितोपदेश करना, सुख-दुःख से युक्त घटनाओं का लोगों के लिए मनोरंजन की दृष्टि से नाट्यशास्त्र के रचना की गई इस प्रकार नाटक में मानव जीवन के विविध पक्षों का निरूपण मिलता है।

संस्कृत नाटकों का सांस्कृतिक दृष्टि से अभी तक उनकी समग्रता में अध्ययन नहीं किया गया है इसलिए प्रारम्भिक काल से लेकर सातवीं शताब्दी ईसवी तक के प्रमुख नाटकों के अध्ययन को आधार बनाकर इस शोध शीर्षक का चयन किया गया है।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। मानव के विचारों में तथा मान्यताओं में परिवर्तन होते रहते हैं। सामाजिक परिवर्तन, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों से सम्बन्धित होते हैं। इन परिवर्तनों की गति प्राचीन काल में अत्यन्त मन्द रही है, जिससे उनका सहज में बोध नहीं होता किन्तु साहित्य

में इस प्रकार के परिवर्तन किसी न किसी रूप में परिलक्षित होते हैं। नाटकों में इस प्रकार के संकेत पात्रों के कथोपकथन से मिलते हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध विवरणात्मक है: इसको पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय परिचयात्मक है, जिसमें शोध के प्रारूप का निरूपण किया गया है। इसी अध्याय में शोध की परिकल्पना, अध्ययन के स्रोत, तथा तथ्य संकलन की दृष्टि से नाटकों का संक्षेप में परिचय दिया गया है। इस अंश में सर्वप्रथम रूपक के भेद और रूपक तथा नाटक के अर्थ का निरूपण किया गया है। इसके पश्चात् शोध सामग्री एवं शोध की विधि पर प्रकाश डाला गया है और अन्त में शोध की परिकल्पना के माध्यम से प्रस्तुत अनुसंधान के लक्ष्य एवं उद्देश्य को निरूपित किया गया है।

द्वितीय अध्याय सामाजिक जीवन से सम्बन्धित है, भारतीय सामाजिक इतिहास के अनेक पक्ष अभी भी अस्पष्ट है और उनकी अनेक प्रकार से व्याख्या की जा सकती है। प्रथम शताब्दी ईसवी से लेकर सातवी शताब्दी के मध्य प्राचीन भारतीय समाज में अनेक उल्लेखनीय परिवर्तन हुए। परम्परागत चार वर्णों के अतिरिक्त वर्णसंकर या मिश्रित जातियों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हुयी। सामाजिक जीवन के क्षेत्र में जो परिवर्तन हुए वे मुख्य रूप से आर्थिक कारणों पर आधारित थे किन्तु धार्मिक और राजनीतिक, कारणों से भी सामाजिक जीवन के क्षेत्र में कतिपय उल्लेखनीय सामाजिक परिवर्तन हुए। द्वितीय अध्याय में सामाजिक जीवन के निरूपण में चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था विभिन्न वर्णों के पारस्परिक सम्बन्ध, तथा कायस्थ आदि पेशेवर जातियों का परिचय, दिया गया है। इसके अतिरिक्त स्त्रियों की अवस्था का निरूपण किया गया है। इसके पश्चात् दास-दासी, प्रमुख संस्कार, वस्त्र, आभूषण, प्रसाधन, भोज्य तथा पेय पदार्थ और अन्त में मनोरंजन के साधनों का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय आर्थिक-जीवन से सम्बन्धित है। प्राचीन भारत में कृषि एवं पशु-पालन प्राचीन भारतीय अर्थ-व्यवस्था के प्रमुख आधार थे। कृषि-पशुपालन के अतिरिक्त, पेड़-पौधों और पालतू पशुओं के अतिरिक्त जंगली पशु-पक्षियों का इस अध्याय में निरूपण किया गया है। शिल्प, वाणिज्य एवं व्यापार का वर्णन इस अध्याय में है।

चतुर्थ अध्याय धार्मिक जीवन से सम्बन्धित है। धार्मिक जीवन की जो झलक नाटकों से प्राप्त होती है, उसमें शैव-वैष्णव आदि धर्मों की लोक प्रियता के संकेत मिलते हैं। यद्यपि बौद्ध धर्म के विषय में भी नाटकों से जानकारी मिलती है तथापि बौद्ध धर्म का भी बहुत कम उल्लेख प्राप्त होता है। अन्य धर्मों में सूर्य की उपासना, ब्रह्मा, लक्ष्मी आदि की उपासना का संकेत मिलता है। नाग पूजा, वृक्ष पूजा आदि लोक धर्मों के विषय में संकेत मिलते है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि धार्मिक जीवन का जो चित्र नाटकों के अध्ययन से सामने आता है वह एकांगी और अपूर्ण प्रतीत होता है। समकालीन अन्य साहित्यिक साक्ष्यों, अभिलेखों और मूर्तिकला सम्बन्धित साक्ष्यों से शैव, वैष्णव धर्मों के साथ-साथ बौद्ध, जैन आदि धर्मों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। गौण धर्मों के विषय में भी साक्ष्य मिलते है।

पाँचवे अध्याय में राजनीतिक जीवन का परिचय प्रस्तुत किया गया है। जिसमें राजतंत्र, शासक, रानियों के विषय में उल्लेख किया गया है। मन्त्रि-परिषद विभिन्न प्रशासनिक अधिकारियों, सैन्य-व्यवस्था, न्याय एवं दंड व्यवस्था के विषय में इस अध्याय में निरूपण किया गया है।

स्रोत एवं तथ्य संकलन

प्रस्तुत अध्ययन मुख्य रूप से प्रधान स्रोतों पर आधारित है। प्रथम स्रोत संस्कृत भाषा में, प्रथम शताब्दी ईसवी से सातवीं शताब्दी ईसवी के बीच, में लिखे गये नाटक हैं। भास, अश्वघोष, कालिदास, शूद्रक, विशाखदत्त, सम्राट् हर्ष एवं भवभूति के नाटकों को मुख्य रूप से प्राथमिक स्रोत के रूप में लिया गया है। गौण स्रोत के रूप में अश्वघोष एवं कालिदास के काव्यों एवं अन्य समकालीन साहित्यिक साक्ष्यों का, यथा संभव नाटकों में उल्लिखित साक्ष्यों की पुष्टि, स्पष्टीकरण और

खंडन-मंडन करने के लिए, उपयोग किया गया है। पुरातात्त्विक साक्ष्यों में समकालिक अभिलेखों का मुख्य रूप से उपयोग किया गया है। अभिलेखों के अतिरिक्त सिक्कों, मूर्तियों, स्मारकों और उत्खनन से प्राप्त अन्य साक्ष्यों का भी यथासंभव उपयोग किया गया है।

संस्कृत नाटकों का विकास और विशेषताएँ

बोल-चाल की भाषा में दृश्य काव्य के लिए नाटक शब्द का प्रयोग किया जाता है क्योंकि इनका अभिनय किया जाता था और ये दर्शकों द्वारा देखे जाते थे।[4] संस्कृत भाषा में नाटक के लिए पारिभाषिक शब्द रूपक मिलता है। रूपक के दस भेद माने जाते हैं। जिनमें से एक नाटक भी है। रूपक के दस भेदों के नाम इस प्रकार है:[5] §1§ नाटक §2§ प्रकरण §3§ भाण §4§ व्यायोग §5§ समवकार §6§ डिम §7§ इहा-मृग §8§ अंक §9§ वीथी §10§ प्रहसन । भरत मुनि ने नाट्य शास्त्र में नाटकों को धर्म, यश,आयु, बुद्धि और ज्ञान की वृद्धि करने में सहायक माना है। प्रत्येक दर्शक अपनी भावना के अनुकूल फल प्राप्त करता है। नाटक के द्वारा दर्शकों में उत्साह की वृद्धि होती है। अपढ़-सुपढ़ हो जाते हैं और विद्वान विशेषज्ञ हो जाते हैं। नाटक धनी लोगों के लिए मनोरंजन का साधन है। दीन, दुखियों के लिए आश्वासन, अर्थोपजीवियों के लिए आय का साधन और उदविग्न लोगों के लिए धैर्य देने वाला है। संक्षेप में नाटक में समाज के सभी वर्गों का मनोरंजन होता है और उनकी इच्छाएँ पूरी होती हैं। दु:खी, थके हुए, शोक से पीड़ित और तपस्वियों सभी के लिए नाटक की किसी न किसी रूप में उपयोगिता स्वत: सिद्ध है।[6]

भारतीय नाट्य साहित्य का विकास कब और कैसे हुआ, इस विषय को लेकर पश्चिमी विद्वानों मे विवाद है। पश्चिमी विद्वानों ने संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति कब और कैसे हुई इस विषय को लेकर अनेक प्रकार के मत प्रकट किये हैं। कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने यह विचार प्रस्तुत किया है कि भारतीय नाटकों का जन्म यूनानी नाटकों के प्रभाव से हुआ है। इस संदर्भ मे संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त हुए यवनिका शब्द को प्रमुख आधार बनाया गया है। अन्य विदेशी विद्वानों के

अनुसार कठपुतली के नृत्य से संस्कृत नाटकों का विकास हुआ। संस्कृत नाटकों में भी प्रारम्भ में सूत्रधार नामक एक पात्र का उल्लेख मिलता है अन्य विद्वानों ने उत्सवों और रामलीला के आधार पर नाटकों के उत्पत्ति प्रस्तावित की है। नाटकों की उत्पत्ति कब और कैसे हुई, इस सम्बन्ध में विदेशी विद्वानों ने बहुत गहराई से गवेषणाएं की है, परन्तु, अभी तक वे किसी निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाये हैं।[7]

भारतीय परम्परा के अनुसार नाटक का विकास स्थानीय परम्परा से हुआ है, वैदिक साहित्य की समीक्षा से ज्ञात होता है कि नाटक के सभी अंगों जैसे संवाद, संगीत, नृत्य एवं अभिन्य का किसी न किसी रूप में वैदिक साहित्य में अस्तित्व था। ऋग्वेद में यम और यमी, पुरूरवा और उर्वशी, अगस्त्य और लोपामुद्रा, सरमा-पणि संवाद आदि में नाटक की संवाद तत्व-बीज रूप में परिलक्षित होते है।[8] कालान्तर में ऐसे ही संवाद अभिनय, नृत्य, गीत और वाद्य आदि से संयुक्त होकर नाटकों के रूप में परिणत हुए।[9] रामायण और महाभारत में भी नाटकों के विषय में कुछ उल्लेख प्राप्त होते हैं। रामायण में नट, नर्तक, नाटक, रंगमंच आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है।[10] इसी प्रकार कुशी लव शब्द का प्रयोग अभिनेता या नट के अर्थ में रामायण में मिलता है।[11] महाभारत में नाटक का कुछ और स्पष्ट रूप प्राप्त होता है।[12] महाभारत में रंगशाला का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। हरिवंश में रामायण की कथा पर आश्रित एक नाटक के खेले जाने का उल्लेख मिलता है।[13]

पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में नट-सूत्र में जिस नाट्य का उल्लेख किया है उससे स्पष्ट है कि चौथी शताब्दी ईसवी पूर्व, जो पाणिनि का समय था, संस्कृत में नाटक रचे जाने लगे थे। शिलालिन् और कृशाश्व नामक नाट्य शास्त्र से सम्बन्धित आचार्यों का पाणिनि ने उल्लेख किया है।[14] परम्परा के अनुसार पाणिनि ने जाम्बवती जय नामक नाटक की रचना भी की। पतन्जलि जिसका समय दूसरी शताब्दी ईसवी पूर्व माना जाता है, ने अपने महाभाष्य में कंसबंध और बलि-बंध नामक नाटकों के अभिनय किये जाने का उल्लेख किया है।[15]

प्राचीन भारतीय ~~नाट्य-शास्त्र~~ भरत मुनि कृत नाट्य शास्त्र में लगभग 36 अध्याय हैं और वह श्लोक बद्ध एक विशाल ग्रंथ है, जिसमें संस्कृत में प्राचीन भारतीय नाट्य-शास्त्र सम्बन्धित विभिन्न विषयों का विस्तृत और प्रमाणिक विवरण उपलब्ध

है।[16] भरत मुनि के समय को लेकर भी विद्वानों में कुछ विवाद है। परन्तु सामान्य रूप से यह माना जाता है कि भरत मुनि द्वितीय शताब्दी ईसवी पूर्व में हुए। भरत मुनि ने अपने नाट्य शास्त्र में इस बात का उल्लेख किया है कि देवताओं ने ब्रह्मा जी से प्रार्थना किया कि हमें मनोरंजन की ऐसी वस्तु दीजिए जिसको चारो वर्णों के व्यक्ति समान रूप से अपना सकें। ब्रह्मा ने चारों वेदों का सार भाग ही पंचम वेद के रूप में नाट्य वेद की रचना की। ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य [संवाद], साम-वेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय, अथर्ववेद से रस लेकर नाट्य वेद का निर्माण किया।[17] प्रारम्भ में यज्ञ आदि के अवसरों पर नाटकों का अभिनय होता रहा होगा। इसके पश्चात् पर्व उत्सव आदि के आवसर पर भी नाटकों का अभिनय होने लगा होगा।

संस्कृत नाटकों में बहुत सी विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं। इनमें यूनानी नाटकों की तरह देश और काल की एकता आवश्यक नहीं है। अर्थात् संस्कृत नाटक की घटना बहुत कालव्यापिनी, तथा अनेक स्थानों पर संघटित भी हो सकती हैं। दीर्घ समय में सभी घटनाओं का अभिनय न होकर खास-खास घटनाओं का एक मात्र अभिनय प्रदर्शित होता है। यूनानी नाटकों में सहगान या कोरस मिलता है किन्तु संस्कृत नाटकों में इसका अत्यन्त अभाव है।[18]

संस्कृत भाषा के नाटक मुख्य रूप से रामायण, महाभारत, पुराण आदि के कथानकों पर आधारित है। संस्कृत नाटकों के पात्र अपने पद तथा मर्यादा के अनुसार भाषा का व्यवहार करते हैं। राजा, ब्राह्मण, शिक्षित और संभ्रान्त व्यक्ति संस्कृत भाषा में और स्त्री, भृत्य, एवं चाण्डाल आदि व्यक्ति प्राकृत भाषा में संवाद बोलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सभी वर्ग के पात्र संस्कृत समझते थे किन्तु वे संस्कृत बोल नहीं पाते रहे होंगे। संस्कृत नाटकों के यथार्थ जीवन का अनुकारक होने से ऐसा नियम बनाया गया रहा होगा। संस्कृत नाटकों में मनोरंजन और हास्य के लिए विदूषक का अस्तित्व मिलता है। विदूषक साधारणतः नायक का मित्र, परिहास-प्रिय एवं मिष्ठान लोलुप ब्राह्मण होता है। विदूषक अपनी चेष्टा, रहस्य पूर्ण वाक्य और बुद्धि हीनता की प्रतीति कराकर केवल हास्य रस की पुष्टिकर नाटक की सजीवता की रक्षा और दर्शकों का मनोरंजन ही नहीं करता बल्कि कभी-कभी वह नायक का नर्म सुहृद बनकर अभीष्ट साधन में सहायता एवं नाटकों के मनोभावों

को अभिव्यक्त करता है।[19] इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि कतिपय संस्कृत नाटकों में विदूषक का वर्णन नहीं प्राप्त होता है। इस संदर्भ में विशाखदत्त के मुद्राराक्षस नाटक और भवभूति के उत्तररामचरितम् का उल्लेख किया जा सकता है।[20] प्राचीन यूनानी नाटकों में भी विदूषक की तरह का एक पात्र मनोरंजन अथवा हास्य के लिए होता है जिसको क्लाउन या फूल कहते हैं।

संस्कृत नाटकों की एक अन्य प्रमुख विशेषता उनका सुखान्त होना है। नाटकों में लोकरंजन के साथ ही साथ सुखान्त होने पर विशेष बल दिया गया है और उसमें शान्ति और सुख-समृद्धि की कामना मिलती है। यूनानी नाटक इसके विपरीत प्राय: दुखान्त एवं सुखान्त दोनो ही प्रकार के होते हैं।

संस्कृत नाटकों में अभिनय सम्बन्धी संकेत यथा-स्थान दिये जाते हैं, जैसे प्रकाशम्, स्वगतम्, अपवारितम्, जनान्तिकम् आदि। संस्कृत नाटकों में इस बात पर भी विशेष बल दिया गया है कि अशिष्ट, असभ्य और अशुभ दृश्य रंगमंच पर ही नहीं दिखलाये जाते हैं जैसे-भोजन करना, चुम्बन, आलिंगन युद्ध एवं मृत्यु आदि से सम्बन्धित दृश्य।

संस्कृत नाटकों का प्रदर्शन या अभिनय कतिपय विशिष्ट अवसरों पर होता था। इस प्रकार के अवसरों में उत्सव, पर्व, राजतिलक, विवाह, पुत्र-जन्म आदि प्रमुख अवसर है जिनके समय नाटकों का अभिनय किया जाता था।

संस्कृत नाटकों की कतिपय विशेषताओं का उल्लेख भरत मुनि के नाट्य शास्त्र में मिलता है। अन्य तत्वों का विस्तृत वर्णन धनंजय के दशरूपक और विश्वनाथ के साहित्य दर्पण में प्राप्त होता है। धननंजय के अनुसार संस्कृत नाटक में वस्तु, नेता और रस ये तीन तत्त्व होते हैं। वस्तु से तात्पर्य कथावस्तु से है।[21] कथा-वस्तु को आधिकारिक और प्रासंगिक इन दो भागों में विभक्त किया गया है।[22] आधिकारिक कथावस्तु मुख्य कथा होती है, जैसे रामायण में रामचन्द्र की प्रासंगिक कथा वस्तु वह हैजो गौण हो किन्तु मुख्य कथा का अंग हो, जैसे रामायण में सुग्रीव या शबरी की कथा।[23] प्रासंगिक कथा के पताका और प्रकरी दो उपभेद किये गये हैं। पताका उस कथा को कहते हैं जो नाटक में कुछ दूर तक मुख्य कथा के साथ चलती है। प्रकरी छोटे-छोटे प्रसंगों या कथानकों को कहते हैं। जैसे रामायण में शबरी की कथा।[24] कथावस्तु को एक अन्य दृष्टि

से तीन भागों में विभाजित किया गया है।[25] ¦1¦ प्रख्यात् ¦2¦ उत्पाद्य ¦3¦ मिश्र। प्रख्यात् कथा वस्तु उसको कहा जाता है जो रामायण महाभारत पुराण आदि प्राचीन भारतीय पारम्परिक ऐतिहासिक ग्रंथों पर आधारित हो जैसे अभिज्ञान शाकुन्तलम् की कथा महाभारत पर आधारित है। उत्पाद्य कथा वस्तु कवि द्वारा कल्पित होती है, जैसे शूद्रक का मृच्छकटिक और भवभूति का मालती माधव। मृच्छकटिक के पात्र देव या दानव नहीं है। इसकी कथावस्तु उज्जैनी के मध्य वर्ग के जीवन पर आधारित है। इसमें उदार दरिद्र, गणिका, चोर, जुआरी, धूर्त राजसेवक पुलिस, कर्मचारी, आदि का चित्रण किया है। इस प्रकार मृच्छकटिक संस्कृत भाषा का एक यथार्थवादी नाटक है। मिश्र कथावस्तु का कुछ अंश इतिहास पर अवलम्बित होता है और कुछ अंश कवि-कल्पित होता है।

नाटकीय कथावस्तु के पाँच प्रमुख तत्व हैं। जिनको अर्थ-प्रकृतियां कहा गया है। पाँच अर्थ प्रकृतियां इस प्रकार है।[26] ¦1¦ बीज ¦2¦ बिन्दु ¦3¦ पताका ¦4¦ प्रकरी ¦5¦ कार्य। मूल कथा तत्व को बीज कहा जाता है। मूल कथा से अवान्तर कथा के जोड़ने वाले कथानक को बिन्दु कहते है। पताका वह प्रासंगिक कथा है, जो मुख्य कथा के साथ काफी आगे तक चलती है। प्रकरी मुख्य कथा के साथ कुछ दूर तक चलने वाली प्रासंगिक कथा को कहते हैं। कार्य जिस फल की प्राप्ति के लिए प्रयत्न किया जाता है, उसे कार्य कहते हैं। जैसे रामायण की कथा में रावण का वध।

<u>नाटक की अवस्थाएं</u>:- नाटक के कथानक के उतार-चढ़ाव एवं घटनाओं की गतिविधि को सूचित करने वाली अवस्थाएं, नाटक की अवस्थाएं कहलाती है। इनके भी पाँच भेद किये गये है।[27] ¦1¦ आरम्भ ¦2¦ यत्न ¦3¦ प्राप्त्याशा ¦4¦ नियताप्ति और ¦5¦ फलागम। मुख्य फल की सिद्धि के लिए जो कार्य किया जाता है उसे आरम्भ कहते है। फल की प्राप्ति के लिए नाटक का नायक जो प्रयास करता है उसे यत्न कहते हैं। फल प्राप्ति की संभावना में बीच में विघ्न आ जाने से जो संदिग्ध स्थिति उत्पन्न हो जाती है उसको प्राप्त्याशा कहते हैं। विघ्नों के निवारण हो जाने से जब फल की प्राप्ति निश्चित हो जाती है तो उस अवस्था को नियताप्ति कहते हैं। इष्ट फल की प्राप्ति की अवस्था को फलागम कहा गया है।

संधियाँ

संस्कृत नाटकों में पाँच अर्थ प्रकृतियों को पाँच अवस्थाओं से जो क्रमशः सम्बद्ध करती हैं, उन्हें संधियाँ कहते हैं। पाँच संधियों के नाम इस प्रकार है।[28] ॥1॥ मुख ॥2॥ प्रतिमुख ॥3॥ गर्भ ॥4॥ विमर्श ॥5॥ निवर्हण। अर्थ-प्रकृतियों, विभिन्न अवस्थाओं और संधियों में पारस्परिक सम्बन्धों को एक तालिका में रखकर सरलता से समझा जा सकता है।

	अर्थ प्रकृतियां	अवस्थाएं	संधियाँ
1.	बीज	आरम्भ	मुख
2.	बिन्दु	यत्न	प्रतिमुख
3.	पताका	प्राप्त्याशा	गर्भ
4.	प्रकरी	नियताप्ति	विमर्श
5.	कार्य	फलागम	उपसंहृति

कथावस्तु का विभाजन

संस्कृत नाटकों के कथावस्तु को कई प्रकार से विभाजित किया गया है। रंगमंच में प्रदर्शित करने की दृष्टि से कथावस्तु के प्रायः दो प्रमुख भेद किये जाते है।[29] ॥1॥ सूच्य और ॥2॥ दृश्य-श्रव्य। जो वस्तुएं वस्तुतः दर्शनीय और श्रवणीय होती हैं, उन्हीं का प्रदर्शन रंगमंच पर अभिनय के द्वारा किया जाता है। कुछ कथाएं नीरस होती हैं या वर्जित मानी जाती है। ऐसी वस्तुओं का प्रदर्शन रंगमंच पर न करके केवल उनकी सूचना दे दी जाती है। सूच्य वस्तुओं को अनेक उपायों से सूचित किया जाता है। उन उपायों को अर्थोपक्षेपक कहा जाता है। अर्थोपक्षेपक पाँच प्रकार के होते हैं।[30] ॥1॥ विष्कम्भक ॥2॥ प्रवेशक ॥3॥ चूलिका ॥4॥ अंकास्य और ॥5॥ अंकावतार। भूत और भावी घटनाओं की सूचना मध्यम श्रेणी के पात्रों द्वारा दी जाती है, उसको विष्कम्भक कहते हैं। इनकी भाषा संस्कृत होती है। भूत और भावी घटनाओं की सूचना जब निम्न श्रेणी के पात्रों द्वारा प्राकृत भाषा मे दी जाती है तो उसे प्रवेशक कहते हैं। पर्दे के पीछे बैठे हुए पात्रों के द्वारा वस्तु या घटना की

सूचना चूलिका के माध्यम से दी जाती है। जैसे नेपथ्य से। किसी अंक की समाप्ति के समय जब पात्र अगले अंक में आने वाले घटना की सूचना देते हुए जाते है, तो उसको अंकास्य कहते हैं। नाटक के एक अंक की समाप्ति के पहले ही अगले अंक की कथावस्तु के प्रारम्भ होने को अंकास्य कहते है।

संस्कृत नाटकों में कथावस्तु का विभाजन कथावस्तु को सुनाने या न सुनाने की दृष्टि से किया जाता है। इस प्रकार इस विभाजन में कथा वस्तु को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जाता है:[31] §1§ सर्व श्राव्य या प्रकाश §2§ अश्राव्य §3§ नियत श्राव्य। सबको सुनाने योग्य संवाद को सर्व श्राव्य या प्रकाश कहते हैं। जो बात सबके सुनाने योग्य न हो और मन ही मन जिस संवाद को कहा जाये उसको अश्राव्य कहा जाता है। जो वाक्य कुछ लोगों को ही सुनाना होता है उसको नियत श्राव्य कहा जाता था। इसके दो उपभेद किये जाते हैं। §1§ जनान्तिक §2§ अपवारित। हाथ की ओट करके दो पात्रों का वार्तालाप करना कि अन्य पात्र उसे न सुन पावे, जनान्तिक कहलाता है। मुँह फेरकर किसी दूसरे पात्र की गुप्त बात कहना अपवारित कहलाता है।

भारतीय नाट्य शास्त्र के आचार्यों के अनुसार प्रत्येक नाटक में आरम्भ करने के पहले कुछ मांगलिक कार्य करने पड़ते हैं, जिसमें देवी, देवताओं आदि की स्तुति के साथ नाटकीय घटनाओं का संकेत भी किया जाता है। इस प्रकार के कृत्य को नान्दी कहते हैं। नान्दी पाठ के विषय में भास के नाटकों में "नान्द्यन्ते तथा प्रविशति सूत्रधार:" उल्लेख प्राप्त होता है। अन्य संस्कृत नाटककारों के नाटकों में पहले मंगल श्लोक मिलता है, इसके बाद नान्द्यन्ते सूत्रधार: मिलता है। भरत मुनि के अनुसार सूत्रधार को नान्दी पाठ करना चाहिए। कालान्तर में यह प्रथा समाप्त हो गयी और कुशी लव या नट नर्तक स्वयं देव-पूजन का कार्य भी सम्पन्न करने लगे।

भास के नाटक

संस्कृत भाषा के कंस वध और बालिबंध नाटकों के खेले जाने का उल्लेख महाभाष्य में पतन्जलि ने किया है। किन्तु भारतीय नाटककारों में सबसे प्राचीन रचना भास की प्राप्त होती है। इसके पश्चात् अश्वघोष, कालिदास, शूद्रक, विशाखदत्त, हर्ष और भवभूति आदि के नाटक आते हैं। भास का समय विवाद-पूर्ण

है। किन्तु उसका समय अन्त: साक्ष्यों के आधार पर पहली शताब्दी ईसवी माना जा सकता है।[32] भास के नाटकों के विषय में 1912 ईसवी में उस समय जानकारी प्राप्त हुयी जब महामहोपाध्याय टी0 गणपति शास्त्री ने केरल के तत्कालीन त्रावण-कोर राज्य से उनके 13 नाटक प्राप्त किये थे। उनके नाटकों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है[33]

1• प्रतिज्ञा यौगन्धरायण

इस नाटक में चार अंक है, कौशाम्बी के राजा वत्सराज उदयन और उज्जयनी के राजा प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता के प्रेम और विवाह का इसमें वर्णन है। प्रद्योत उदयन के बन्दी बना लिए जाने और मन्त्री यौगन्धरायण द्वारा उदयन् को छुड़ा लेने का कथानक इस नाटक मे विषय वस्तु है।

2• स्वप्नवासवदत्तम्

इस नाटक में 6 अंक है। मंत्री यौगन्धरायण का "वासवदत्ता अग्नि मे जलकर मर गई" इस प्रवाद को फैला कर उदयन का पद्मावती से विवाह कराना तथा उदयन के अपहृत राज्य को पुन: प्राप्त कराने का वर्णन है।

3• उरुभंग

यह एकांकी नाटक है। "द्रौपदी के अपमान के प्रतिकार स्वरूप भीम द्वारा दुर्योधन की जंघा को भंग करके उसको मारने का वर्णन है।

4• दूत वाक्य

यह भी एकांकी नाटक है। महाभारत के युद्ध से पूर्व श्रीकृष्ण का पाण्डवों की ओर से सन्धि का प्रस्ताव लेकर दुर्योधन के पास जाना और विफल मनोरथ व लौटने का वर्णन है।

5• पंचरात्र

इस नाटक में तीन अंक है। यज्ञ की समाप्ति पर द्रोण ने दुर्योधन से दक्षिणा माँगी कि पाण्डवों का आधा राज्य दे दो। दुर्योधन ने कहा कि यदि पाँच रात्रि के अन्दर पाण्डव मिल जायेंगे तो ऐसा कर दूँगा। द्रोण के प्रयत्न से पाण्डव मिलते

हैं और आधा राज्य प्राप्त कर लेते हैं।

6· बाल चरित

इस नाटक में पाँच अंक हैं। इसमें श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर कंस वध तक की कथा वर्णित है।

7· दूत-घटोत्कच

यह एकांकी नाटक है। अभिमन्यु की मृत्यु के पश्चात् श्रीकृष्ण का घटोत्कच को दूत बनाकर धृतराष्ट्र के पास भेजना और दुर्योधन द्वारा उसका अपमान। दुर्योधन कहता है कि-"मैं इसका उत्तर बाणों से दूँगा।"

8· कर्णभार

यह एकांकी नाटक है। इसमें कर्ण का ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र का कवच और कुंडल दान में देने का वर्णन है।

9· मध्यम व्यायोग

यह व्यायोग नाम एकांकी नाटक है। मध्यम पाण्डव भीम के द्वारा घटोत्कच के हाथ से एक ब्राह्मण-पुत्र को बचाने का वर्णन है। भीम अपने पुत्र घटोत्कच को देखकर आनन्दित होता है तथा पत्नी हिडिम्बा से उसका पुनर्मिलन होता है।

10· प्रतिमानाटकम्

इस नाटक में सात अंक हैं। इसमें रामायण की कथा संक्षेप में वर्णित है। इसमें राम का राज्याभिषेक रुकने, 14 वर्ष का वनवास, दशरथ की प्रतिमा देखकर भरत को दशरथ की मृत्यु का ज्ञान, अयोध्या में बिना आये भरत का राम के पास जाना, पादुका लेकर लौटना, सीताहरण, रावण वध, राम-राज्याभिषेक आदि का वर्णन है।

11. अभिषेक नाटक

इस नाटक में 6 अंक हैं। इसमें रामायण के किष्किन्धा काण्ड से युद्ध कांड तक की सारी कथा संक्षेप में दी गई है। अन्त में रावण-बध के पश्चात् राम के राज्याभिषेक का वर्णन है।

12. अविमारक

इस नाटक में 6 अंक हैं। इसमें राजकुमार अविमारक का राजा कुन्ति भोज की पुत्री कुरंगी के साथ प्रणय-विवाह का वर्णन है।

13. चारुदत्त

इस नाटक में चार अंक है। इसमें निर्धन किन्तु उदारमना ब्राह्मण चारुदत्त और वसन्तसेना नाम की वेश्या के प्रणय का वर्णन है। इसमें भरत-वाक्य नहीं हैं और कथा अधूरी है। चारुदत्त के यहाँ अभिसार के लिए वसन्त सेना की तैयारी तक का वर्णन है। संभवतः भास की मृत्यु के कारण यह नाटक पूरा नहीं हो सका था। यह माना जाता है कि इसी. नाटक के आधार पर शूद्रक ने अपना मृच्छकटिक नाटक लिखा है और भास की कथा को पूर्ण किया है।

अश्वघोष के नाटक

अश्वघोष कुषाण शासक कनिष्क प्रथम {78-120 ईसवी} के समकालीन माने जाते हैं। इनका समय प्रथम शताब्दी ईसवी मानना उचित प्रतीत होता है। एच0 लूडर्स को मध्य एशिया के तुर्फान नामक स्थान से ताड़पत्रों पर खरोष्ठी लिपि में लिखित अश्वघोष के तीन नाटक प्राप्त हुए थे।[35] इनमें से शारिपुत्र प्रकरण अपेक्षाकृत सुरक्षित स्थिति में प्राप्त हुआ है। दो अन्य नाटकों के विषय में उनके अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण होने के कारण उनके नाम अज्ञात हैं। शारिपुत्र प्रकरण की पुष्पिका {अन्तिम वाक्य} में जो निर्देश है उससे यह ज्ञात होता है कि वे साकेत के निवासी थे। माता का नाम सुवर्णाक्षि था। वे बौद्ध भिक्षु थे, उन्हें आर्य भदन्त भी कहते थे। {आर्या-सुवर्णाक्षी पुत्रस्य साकेतस्य भिक्षोराचार्यस्य भदन्ताश्वघोषस्य महाकवेर्महावादिनः-

कृतिरियम्}} किम्वदन्ती है कि वह जन्म से ब्राह्मण थे। बाद में बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गए थे।

शारिपुत्र प्रकरण में 9 अंक हैं। शारिपुत्र और मौद्गलायन नामक दो युवकों के बुद्ध के उपदेश से प्रभावित होकर बौद्ध धर्म में दीक्षित होने की कथा पर यह आधारित है। इसमें भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के निर्देशों का पालन किया गया है। इस में बुद्ध स्वयं रंगमंच पर प्रवेश करते हैं। भरतवाक्य में बुद्ध अपने नवदीक्षित शिष्यों को आशीर्वाद देते है।

दूसरा नाटक अत्यन्त खण्डित रूप में प्राप्त हुआ है इसलिए इसका नाम अज्ञात है। यह रूपकात्मक नाटक है। इसके पात्र बुद्धि, कीर्ति, धृति इत्यादि हैं। अश्वघोष का तीसरा नाटक भी खण्डित अवस्था में प्राप्त हुआ है इसलिए इसका भी नाम अज्ञात है। इसके पात्र हैं:- गणिका मागधवती, विदूषक कौमुदगन्ध, सोमदत्त, शारिपुत्र तथा मौद्गलायन आदि। इसकी रचना का उद्देश्य संभवत: धार्मिक उपदेश देना था।

कालिदास के नाटक

कालिदास के समय को लेकर विवाद है। कतिपय विद्वान् कालिदास का समय प्रथम शताब्दी ई०पू० मानते हैं कालिदास का समय प्रथम शताब्दी ई०पू० मानते हैं किन्तु अधिकांश विद्वान् कालिदास का समय चतुर्थ शताब्दी ईसवी {{गुप्त काल}} मानते हैं। इस शोध प्रबन्ध में चतुर्थ शताब्दी ईसवी के मत को स्वीकार किया गया है।[3]

कालिदास संस्कृत भाषा के विश्वविश्रुत नाटककार हैं। इनके तीन नाटक प्राप्य हैं। नाटकों के रचना क्रम के विषय में किंचित् विवाद है किन्तु रचनाकाल की दृष्टि से इनके तीनों नाटकों का क्रम इस प्रकार है:[37] 1. मालविकाग्निमित्रम्, 2. विक्रमोर्वशीयम्, 3. अभिज्ञान शाकुन्तलम्।

मालविकाग्निमित्रम् में 5 अंक हैं। इसमें मालविका और अग्निमित्र के प्रणय और विवाह का वर्णन है। मालविका विदर्भ की राजकुमारी है। माधव सेन को उसका चचेरा भाई यज्ञसेन बंदी बना लेता है। मालविका निकल भागती है और

अग्निमित्र की शरण में जाना चाहती है। राजधानी विदिशा की ओर जाते हुए रास्ते में विन्ध्याटवी में डाकुओं का सार्थ पर आक्रमण हो जाता है। डाकुओं से लड़ता हुआ सुमति मारा जाता है। मालविका बच निकलती है और विदिशा पहुँच जाती है। तदनन्तर मालविका अग्निमित्र की महारानी धारिणी के महल में शरण लेती है। राजा अग्निमित्र उस पर अनुरक्त हो जाता है। मालविका का वास्तविक परिचय प्राप्त होने पर रानी धारिणी की अनुमति से राजा अग्निमित्र के साथ मालविका का विवाह हो जाता है।

मालविकाग्निमित्रम् कालिदास की प्रथम नाट्य कृति है जो संभवत: उज्जयिनी में वसंतोत्सव के अवसर पर अभिनीत किया गया था। इसकी प्रस्तावना में कालिदास ने भास, सौमिल्ल और कविपुत्र के नाटकों के रहते हुए नया रूपक प्रस्तुत करने की धृष्टता के लिए क्षमा याचना की है। पुष्यमित्र, अग्निमित्र तथा वसुमित्र स्पष्टत: शुंग राजवंश से गृहीत पात्र हैं। यह राजवंश सेनापति पुष्यमित्र के द्वारा अंतिम मौर्य शासक बृहद्रथ को सिंहासन-च्युत करने पर प्रतिष्ठित हुआ था। उसके समय में यवनों के साथ संपर्क का उल्लेख एक अभिलेख मिलता है।

विक्रमोर्वशीयम् कालिदास की द्वितीय नाट्यकृति है। यह 5 अंकों का त्रोटक नामक उपरूपक है। इसमें राजा पुरूरवा और उर्वशी नामक अप्सरा की प्रणय कथा वर्णित है। पुरूरवा और उर्वशी की कथा ऋग्वेद, यजुर्वेद, शतपथ ब्राह्मण, विष्णु पुराण, मत्स्य पुराण और महाभारत में मिलती है। कालिदास ने वैदिक आख्यान को अपने नाटक में नवीन रूप दिया है। इस नाटक के दो संस्करण उपलब्ध है: 1. बंगाली संस्करण देवनागरी हस्तलिपि में, 2. दाक्षिणात्य संस्करण दक्षिण की हस्तलिपियों में। दोनों में बहुत अंतर है। उत्तर के संस्करण में इसको त्रोटक कहा गया है। इसका आधार पद्यों के साथ राग-रागिनियों से युक्त नृत्य का संयोग है। दाक्षिणात्य संस्करण में इसकी संज्ञा नाटक है और इसमें राग-रागिनियों की उपेक्षा की गयी है।

आभिज्ञान-शाकुन्तलम् असंदिग्ध रूप से कालिदास की नाट्य कला का सर्वोत्कृष्ट रूप है। इसमें 7 अंकों में हस्तिनापुर के पुरुवंशी राजा दुष्यन्त और कण्वऋषि

की पालिता पुत्री शकुन्तला के प्रेम, वियोग तथा पुनर्मिलन की कथा का निरूपण हैं। शकुन्तला की कथा मूल रूप में महाभारत के आदिपर्व तथा पद्म पुराण में प्राप्त होती है किन्तु कालिदास ने अपनी प्रतिभा और अनुपम-कल्पना शक्ति के द्वारा इसको एक मनोरम आख्यान बना दिया है। इसको कवि के रचना काल के अंतिम चरण की कृति मानना उचित है।

शूद्रक कृत मृच्छकटिक

मृच्छकटिक के लेखक शूद्रक के समय को लेकर पर्याप्त विवाद है। सामान्यत: इस नाटक के अन्त:साक्ष्यों के आधार पर जिस राजनीतिक आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति का संकेत मिलता है, उसके आधार पर इस नाटक का रचना काल पाँचवी-छठवीं शताब्दी ईसवी माना जा सकता है।[38] मृच्छकटिक 10 अंकों का एक प्रकरण है।[39] भरत के नाट्यशास्त्र के अनुसार प्रकरण की कथावस्तु कल्पित होती है,उसका नायक राजा न होकर विप्र, वणिक्, सचिव, पुरोहित, आमात्य, सार्थवाह आदि में से कोई एक होता है, इसमें मध्यवर्गीय पात्रों की सामाजिक स्थिति का वास्तविक (यथार्थ) चित्रण किया जाता है। दास, विट् श्रेष्ठि तथा वेश्या आदि पात्रों के माध्यम से यथार्थ जीवन का प्रस्तुतीकरण किया जाता है।

इस दृष्टि से मृच्छकटिक में प्रकरण की सभी नाट्य शास्त्रीय विशेषताएँ मिलती हैं। इसमें चारूदत्त नामक एक निर्धन ब्राह्मण जो सार्थवाह है के वसंत सेना नामक गणिका से प्रेम का वर्णन हैं। अन्त में दोनों का प्रेम सफल होता है और चारूदत्त का वसन्त सेना के साथ विवाह हो जाता है।

इस प्रकरण के प्रथम चार अंक किंचित परिवर्तन के साथ भासकृत चारूदत्त नामक नाटक की प्रतिकृति हैं। प्रस्तावना में ही यह तथ्य सूत्रधार के भाषा-व्यतिक्रम से सूचित होता है। आरम्भ में वह संस्कृत बोलता है और फिर प्राकृत भाषा बोलने लगता है। इस व्यतिक्रम का कारण अस्पष्ट है। इसके विपरीत चारूदत्त में वह केवल प्राकृत भाषा बोलता है जो उसकी भूमिका के अनुरूप है। पात्रों के नाम कुछ बदल गए हैं। राजा के साले का नाम संस्थानक है और चोर ब्राह्मण का नाम

चारूदत्त नाटक में सज्जलक है, मृच्छकटिक में शार्विलक है।

सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से मृच्छकटिक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रकरण है इस में समाज के विभिन्न वर्गों का यथार्थ स्वरूप वर्णित है। इस में चारो वर्णों की स्थिति, नारी की दशा, समाज में प्रचलित द्यूत आदि के व्यसन, संगीत, नृत्य आदि कलाओं की स्थिति, देश की आर्थिक दशा, बिगड़ी हुई राजनीतिक स्थिति, न्यायालयों में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा दण्ड विधान की कठोरता आदि का अत्यन्त सजीव चित्रण किया गया है। इस दृष्टि से मृच्छकटिक का अत्यन्त विशिष्ट स्थान माना जा सकता है। यह एक साहित्यिक रचना है किसी भी अर्थ में ऐतिहासिक दस्तावेज नहीं है तथापि सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से यह एक अत्यन्त उत्कृष्ट रचना है।

विशाखदत्त कृत मुद्राराक्षस

मुद्राराक्षस नाटक के रचनाकार विशाखदत्त के कालक्रम के विषय में विवाद है। मुद्राराक्षस की प्रस्तावना से विशाखदत्त के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त होती है। सामन्त वटेश्वरदत्त के पौत्र और महाराज पृथु के पुत्र विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस नाटक की रचना किया था। नाटक के भरतवाक्य में संभवत: गुप्तवंश के चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य का उल्लेख है। यदि यह उल्लेख सही है तो विशाखदत्त का समय चौथी-पाँचवीं शताब्दी ईसवी माना जा सकता है। मुद्राराक्षस की हस्तलिखित प्रतियों में भरतवाक्य में पाठान्तर मिलता है जिन में दंतिवर्मा, रंतिवर्मा और अवन्तिवर्मा, पाठान्तर मिलते हैं। दन्तिवर्मा लगभग 7020 ई0 पल्लव का शासक था। अवन्तिवर्मा (580-600ईसवी) मौखरि वंश के कन्नौज के शासक थे। प्रभाकरवर्द्धन की पुत्री राज्यश्री का विवाह उसके पुत्र ग्रहवर्मा के साथ हुआ था। इस आधार पर विशाखदत्त का समय छठवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध अथवा सातवीं शताब्दी ईसवी माना जा सकता है।[40]

मुद्राराक्षस 7 अंकों का राजनीति विषयक नाटक है इसमें मुद्रा(अंगूठी) के माध्यम से राक्षस को वंश में करने का वर्णन है, अत: इस का नाम मुद्राराक्षस पड़ा। इसमें चाणक्य के द्वारा नन्द वंश के विनाश के पश्चात् कूटनीतिक प्रयासों से नंद वंश के प्रधान अमात्य राक्षस को चन्द्रगुप्त मौर्य का प्रधान अमात्य बनाये जाने का वर्णन

है। यह संस्कृत के विशिष्ट नाटकों में से एक है। यह राजनीतिक कूटनीति एवं दाँव-पेंच का नाटक है। इससे राजनीति, अर्थशास्त्र, गणित, ज्योतिष, नाट्शास्त्र आदि के विषय में प्रकाश पड़ता है।

देवीचन्द्र गुप्तम् विशाखदत्त रचित एक प्रकरण (दस अंकों का नाटक विशेष) है जो सम्प्रति अनुपलब्ध है। इसके कुछ अवतरण मात्र उदाहरण स्वरूप सिद्धान्त ग्रन्थों में प्राप्त हुए हैं। भोजकृत "श्रृंगार प्रकाश" तथा रामचन्द्र गुण चन्द्र कृत नाट्य दर्पण" में इसके कुछ अवतरण मिले हैं।

इन अवतरणों से यह विदित होता है कि समुद्रगुप्त का उत्तराधिकारी उसका पुत्र रामगुप्त था, जिसकी पत्नी का नाम ध्रुवदेवी था। किसी शक राजा से पराजित होने पर उसने अपनी रानी ध्रुवदेवी को उस शक राजा को समर्पित करना स्वीकार कर लिया। रामगुप्त के भाईचन्द्रगुप्त ने इस अपमानजनक कृत्य का विरोध किया। चन्द्रगुप्त ध्रुव देवी के छद्म वेश में शत्रु के खेमे में गया तथा शक राजा की हत्या करने में सफल रहा। इसके पश्चात् चन्द्रगुप्त ने रामगुप्त की भी हत्या कर दी एवं उसकी पत्नी ध्रुवदेवी के साथ विवाह करके स्वयं शासक बन गया।

इस प्रकार देवीचन्द्र गुप्तम् नाटक से भी राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन के कतिपय पक्षों पर प्रकाश पड़ता है। देवीचन्द्रगुप्तम् की कथा का संकेत अन्य साहित्यिक साक्ष्यों से प्राप्त होता है।

हर्ष के नाटक

स्थाण्वीश्वर (थानेश्वर) एवं कान्यकुब्ज (कन्नौज) के शासक महाराजाधिराज श्री हर्ष महाराजाधिराज प्रभाकरवर्द्धन के पुत्र और राज्यवर्द्धन के छोटे भाई थे। राज्यवर्द्धन की हत्या हो जाने के पश्चात् वे राजा हुए। हर्ष का शासन काल 606 से 648 ईसवी के मध्य माना जाता है।[4] इस प्रकार हर्ष एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व है। हर्ष विद्वानों एवं कवियों के आश्रयदाता थे। हर्ष बाणभट्ट के आश्रयदाता थे। बाण भट्ट ने हर्षचरित नामक आख्यायिका और कादम्बरी नामक कथा ग्रन्थ की रचना की थी। परम्परा के अनुसार मातंग दिवाकर और मयूर नामक दो दरबारी अन्य कवि थे। धावक

नामक एक अन्य कृति के सन्दर्भ में उल्लेख प्राप्त होता है। हर्ष प्रसिद्ध कवियों के आश्रयदाता होने के साथ-साथ स्वयं विविध शास्त्रों के ज्ञाता, विद्वान्, कवि और कुशल नाटककार थे।

नाटककार के रूप में हर्ष का स्थान निस्संदेह लेखक-राजाओं में बहुत ऊँचा है। उसने दो अत्यन्त उच्च कोटि की नाटिकाओं-प्रियदर्शिका और रत्नावली- तथा नागानन्द नामक एक नाटक की रचना की थी। प्रियदर्शिका 4 अंकों की एक नाटिका है। इसमें वत्सराज उदयन और कलिंग राजा दृढ़वर्मा की पुत्री प्रियदर्शिका (आरण्यका) के प्रणय तथा परिणय का वर्णन है।

रत्नावली 4 अंकों की नाटिका है। इस में वत्सराज उदयन और सिंहल देश की राजकुमारी रत्नावली (सागरिका) के प्रणय और परिणय की कथा का वर्णन है।

नागानन्द हर्षकृत 5 अंकों का नाटक है। इसमें विद्याधर-कुमार जीमूतवाहन और सिद्धकुमार-मित्रावसु की बहिन मलयवती के प्रणय एवं परिणय की कथा प्रथम तीन अंकों में वर्णित है। चतुर्थ अंक में जीमूतवाहन समुद्रतट पर गरूड़ द्वारा खाये हुए सर्पों के हड्डियों के ढेर देख कर दु:खित होता है। पाँचवे अंक में शंखचूड़ नामक सर्प को जीमूतवाहन अपनी बलि देकर गरूड़ से बचाता है। मृतप्राय जीमूतवाहन गौरी की कृपा से फिर से जीवीत हो जाता है। गौरी उसका अभिषेक करके उसको चक्रवर्ती बनाती है।

नाटिकाओं की कथावस्तु वत्सराज उदयन के व्यक्तित्व के चारो ओर बुनी गयी है। नाटिकाओं की गणना उपरूपकों में होती है। नाटिका की कथा काल्पनिक होती है, स्त्री पात्र अधिक होते हैं, अंकों की संख्या 4 होती है, नायक धीर ललित राजा होता है, राजकुमारी कन्या नायिका होती है। नाटिका अधिकांश लक्षण प्रियदर्शिका और रत्नावली में मिलते हैं। प्रियदर्शिका की अपेक्षा रत्नावली अधिक प्रौढ़ कृति है। अत: नाटिका के आदर्श के रूप में वही सर्वत्र संमानित है।

नागानन्द हर्ष की अंतिम रचना मानी जाती है। बृहत्कथा तथा वेताल-पंचविंशति में प्राप्य बौद्ध कथा इस नाटक का आधार है। इस नाटक में बौद्ध धर्म का प्रभाव स्पष्ट है। नागानन्द के अंतिम दो अंकों (अंक 4-5) में ~~हर्ष~~ नाटक का नये रूप में दर्शन होता है। नाटक का नायक जीमूतवाहन विलक्षण रूप से निबद्ध होने पर भी बौद्धों का एक आदर्श है। उसका दृढ़ विश्वास है कि परोपकार के लिए आत्म-बलिदान परम धर्म है। यह कहा जा सकता है कि नाटक के दोनों भागों में सामंजस्य की अवश्य कमी है किन्तु प्रभावान्विति में नाटक पूर्णत: सफल है। इसके अंतिम दो अंकों में अहिंसा, आत्म-बलिदान, दान, दया तथा परोपकार का अत्यन्त प्रभावोत्पादक ढंग से महत्त्व वर्णित है।

प्रियदर्शिका, रत्नावली और नागानन्द नामक इन तीनों कृतियों की रचना किसी एक व्यक्ति ने ही की थी। दोनों नाटिकाओं और नागानन्द नाटक की प्रस्तावना में हर्ष को इनका रचनाकार बतलाते हुए उन्हें "निपुण कवि" (श्री हर्षो निपुण: कवि:) कहा गया है। प्रियदर्शिका और रत्नावली में एक श्लोक तथा प्रियदर्शिका और नागानन्द में दो श्लोकों की आवृत्ति हुई है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इन तीनों कृतियों में शैली की नितान्त एकरूपता है, तीनों का स्वर एक है। अत: भिन्न व्यक्तियों को उनका रचयिता मानना सर्वथा असंगत है।

प्राचीन काल में भी यह प्रश्न उठा था कि इनका वास्तविक रचयिता कौन है। मम्मट ने अपने काव्य प्रकाश में केवल इतना निर्देश किया है कि काव्य का प्रयोजन धन की प्राप्ति भी है जैसे श्री हर्ष आदि से धावक आदि को धन की प्राप्ति।[42] (श्रीहर्षादिधावकादीनामिव धनम्) इस पर टीकाकारों ने स्पष्टीकरण किया कि यह उक्ति रत्नावली के विषय में है जो हर्ष के नाम से विख्यात हुई। धावक नामक कवि ने इसकी रचना की थी और हर्ष से धन लेकर उसे उनके नाम से प्रचलित कर दिया था। किन्तु प्रारम्भिक परम्परा इस बात का समर्थन नहीं करती है। चीनी यात्री इत्सिंग ने हर्ष के द्वारा नागानंद के इतिवृत्त के नाटकीकरण और रंगमंचीय आयोजन का स्पष्ट निर्देश किया है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि हर्ष ही इन तीनों कृतियों के रचयिता हैं।

भवभूति के नाटक

भवभूति का नाम भी संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककारों में गिना जाता है। भवभूति ने अपने तीनों नाटकों की प्रस्तावनाओं में अपना संक्षिप्त परिचय दिया है। ये उदुम्बर नामक ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे। महाराष्ट्र के विदर्भ के अंतर्गत पद्मपुर के निवासी थे। इनके पिता का नाम भट्ट गोपाल और पिता को नाम नीलकंठ था। इनकी माता का नाम जतुकर्णी था। इनका मूल नाम श्रीकंठ था। ये कवि के रूप में भवभूति के नाम से विख्यात हुए । ये काश्यप गोत्र के थे और कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के अनुयायी थे। वे व्याकरण, काव्य शास्त्र और न्याय दर्शन के ज्ञाता थे। भवभूति के तीनों रूपक कालिप्रियनाथ के यात्रा महोत्सव के अवसर पर अभिनीत हुए थे। कालप्रिय सामान्यत: उज्जयिनी के महाकाल को माना जाता है।

भवभूति के समय के विषय में भी निश्चित जानकारी नहीं है। बाणभट्ट ने भवभूति का उल्लेख नहीं किया है। अत: भवभूति को बाण का समकालिक अथवा परवर्ती माना जा सकता है। कन्नौज के शासक यशोवर्मा {725-752 ईसवी} के आश्रित वाक्पतिराज ने गडडवहो में भवभूति की प्रशंसा किया है। वामन ने अपनी काव्यालंकार सूत्रवृत्ति में भवभूति को उद्धृत किया है। वामन का समय आठवीं-नवीं शताब्दी ईसवी माना जाता है। ऐसी स्थिति में भवभूति का समय 700 ईसवी के आस-पास माना जा सकता है।[43]

भवभूति के तीन रूपक प्राप्त होते है।1• मालतीमाधव, 2• महावीर चरित, और 3• उत्तररामचरित। मालती माधव 10 अंकों का एक प्रकरण है। मालतीमाधव की कथा कवि-कल्पित है। इसमें पद्मावती के राजा के मंत्री भूरिवसु की पुत्री मालती और विदर्भ के राजा के मंत्री देवरात के पुत्र माधव के प्रणय तथा परिणय की कथा का वर्णन है। नायक माधव के मित्र मकरंद तथा नायिका की सखी मदयंतिका का प्रेम एवं विवाह भी सहायक कथानक के रूप में मिलता है।

महावीर चरित 7 अंकों का रूपक है। इसमें राम के विवाह से लेकर राज्याभिषेक तक की कथा वर्णित है। महावीर चरित में प्रधान घटनाओं का वर्णन करते हुए

कथोपकथन के माध्यम से रामायण की मुख्य कथा का निरूपण किया गया है। नाटकीय प्रभाव के लिए सारी कहानी को जानबूझ कर एक नया रूप दिया गया है- आरम्भ से रावण राम का विरोध करता है और उन्हे नष्ट करने के लिए षडयंत्र रचता है।

उत्तर रामचरित तीसरा नाटक है। इसमें 7 अंक हैं। इसका आधार व वाल्मीकि रामायण के उत्तर काण्ड की कथा है। इसमें उल्लेख मिलता है कि राज्याभिषेक के पश्चात जनक विदा हो गए हैं। गर्भवती सीता खिन्न है और राम उसे सान्त्वना देते हैं। चित्रवीथिका में चित्रों के माध्यम से अतीत की घटनाओं को देखते हैं। लोकापवाद से राम सीता का परित्याग करते है। अन्य बातों में शम्बूक बध, राम विलाप लवकुश की प्राप्ति तथा राम के द्वारा निर्दोष सीता के स्वीकार किये जाने का वर्णन है।

संस्कृत नाटकों में मुख्यत: समाज के सम्भ्रान्त वर्ग के जीवन का निरूपण मिलता है। यद्यपि राजा एवं राजपरिवार के विषय में इनके अध्ययन से विशेष जानकारी प्राप्त होती है तथापि नाटकों में जन सामान्य के जीवन की विविध घटनाओं का संक्षिप्त किन्तु स्पष्ट चित्रण मिलता है। राजकीय जीवन, राजपरिवारों के विषय में विस्तृत विवरण मिलते हैं किन्तु जन सामान्य के कष्टों, दारिद्रय का भी यत्र-तत्र वर्णन प्राप्त होता है। सामाजिक जीवन के अतिरिक्त आर्थिक एवं धार्मिक जीवन के विषय में नाटकों के अध्ययन से जानकारी प्राप्त होती है। इस प्रकार नाटकों का भारतीय सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से उल्लेखनीय स्थान है।

सन्दर्भ

1• नाट्यशास्त्र 1•116

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं, नसा विद्या न सा कला।

नासौ योगो, न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।।

2• नाट्यशास्त्र 1•12

तस्माद् सृजापरं वेद पंचम सार्ववर्णिक्।

3• शर्मा, आर0 एस0 पूर्व मध्यकाल में सामाजिक परिवर्तन पृष्ठ

4• साहित्य दर्पण

दृश्यश्रव्यत्वभेदेन, पुन: काव्य द्विधा मतम्।

दृश्यं तत्राभिनेयं तद्रूपारोपात्तु रूपकम्।।

5• साहित्यदर्पण 6•3

नाटकमथ, प्रकरणं भाणव्यायोग समवकार डिमा:।

ईहामृगांक्वीथ्य:, प्रहसनमिति रूपकाणिदश।।

6• नाट्यशास्त्र 1-100-15

अबुधानां विबोधश्च वैदुष्यं विदुषामपि।।

ईश्वराणां विलासश्च स्थैर्य दु:खार्दितस्य।

अर्थोपजीविनामर्थो धृतिरुद्विग्न चेतसाम्।।

x x x x

दुखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।

विश्रान्तिजनं काले, नाट्यमेतन्मया कृतम्।।

7• कीथ, ए0 बी0 संस्कृत नाटक दिल्ली 1965 पृष्ठ 1-17 (हिन्दी अनुवाद)
अनुवादक उदय भानु सिंह

8• कीथ, ए0बी0 पार्श्वोद्धरित (1965) पृष्ठ 18-21

9• नाट्यशास्त्र 1-16-17

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात्, सामभ्यो गीतिमेव
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।

10· रामायण 1·4-9

रसैः श्रृंगारकरुणहास्यरौद्रभयानकैः।
वीरादिभिः रसैर्युक्तं काव्यमेतदगायताम्।।

11· रामायण 2·67-15; 2·69·4

नाराजके जनपदे प्रकृष्टनटनर्तकाः।

12· महाभारत 2·12·36

नाटकाः विविधाः काव्याः कथाख्यायिक कारकाः।

*   *   *   *   *

आनर्ताश्च तथा सर्वे नटनर्तकगायकाः।

13· हरिवंश पुराण 91·97

14· अग्रवाल, वासुदेव शरण, पाणिनि कालीन भारतवर्ष [द्वितीय संस्करण], वाराणसी, 1969 पृष्ठ 327

15· महाभाष्य 3·2·111

16· कीथ, ए0 बी0 पूर्वोद्धरित [1965] पृष्ठ 310

17· नाट्यशास्त्र 1·16-17

18· कीथ, ए0 बी0 पूर्वोद्धरित [1965] पृष्ठ 382

19· साहित्य दर्पण 6·42

20· उत्तर राम चरितम् [संपादक] श्री शेषराज शर्मा रेग्मी चौखम्बा, वाराणसी 1979

21· दशरूपक 1·11

22· साहित्यदर्पण 6·42

23· दशरूपक 1-12

24· दशरूपक 1-13

25· दशरूपक 1·15

26· साहित्य दर्पण 6·65-66

27· दशरूपक 1·20

28• साहित्य दर्पण 6•75

29• साहित्य दर्पण 6•54-60

30• दशरूपक 1•56-63

31• दशरूपक 1•64-67

32• पुसाल्कर, ए0 डी0 भास-एस्टडी, लहौर, 1940 पृष्ठ 21

33• टी0 गणपति शास्त्री ने त्रिवेन्द्रम संस्कृत सिरीज से सभी नाटकों का संपादन किया है।

34• कीथ, ए0 बी0 पूर्वोद्धरित §1965§ पृष्ठ 88-98

35• मजूमदार, आर0 सी0 दि एज एज ऑव इंम्पीरियल यूनिटी §चतुर्थ संस्करण§ बम्बई 1968 पृष्ठ 258

36•कीथ, ए0 बी0 पूर्वोद्धरित §1965§ पृष्ठ 144-46

37• कालिदास ग्रन्थावली §संपादक§ रेवा प्रसाद द्विवेदी, वाराणसी 1976

38• कीथ, ए0 बी0 पूर्वोद्धरित §1965§ पृष्ठ 129

39• मृच्छकटिकम् §चतुर्थ संस्करण§ §संपादक§ श्री निवास शास्त्री साहित्य भण्डार मेरठ 1976 पृष्ठ 27-29

40• कीथ, ए0 बी0 पूर्वोद्धरित §1965§ पृष्ठ 213

41• त्रिपाठी रमाशंकर हिस्ट्री ऑव कनौज वाराणसी 1937 पृष्ठ 15

42• काव्य प्रकाश 1•2

43• कीथ, ए0 बी0 पूर्वोद्धरित, पृष्ठ, 192

द्वितीय अध्याय

सामाजिक जीवन

सामाजिक-व्यवस्था

प्राचीन भारत की सामाजिक अवस्था के अध्ययन के लिए संस्कृत नाटक अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन है। इनमें समाज के विभिन्न वर्गों का यथार्थ रूप वर्णित हैं। समाज में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था प्रचलित थी। प्राचीन भारतीय समाज की सबसे पुरानी रूप रेखा वैदिक साहित्य में दृष्टिगोचर होती है।[1] छठवीं शता0ई0पू0 में बौद्ध एवं जैन आदि श्रमण धर्मों का उदय कर्म काण्ड, यज्ञ आदि जटिल व्यवहारों से जन साधारण को छुटकारा दिलाने के लिए हुआ। प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल में नगरीय संस्कृति के उदय तथा शिल्प एवं उद्योग धन्धों के विकास ने सामाजिक जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला।[2] मौर्य, शुंग काल में सामाजिक संघटन वर्ण-व्यवस्था पर आधारित था किन्तु श्रम और शिल्प के आधार पर समाज में सामाजिक स्थिति का निर्धारण होता था।[3] मौर्योत्तर काल में हिन्द यवन शक एवं कुषाणों का क्रमशः आगमन और उत्तर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में इनके राज्य स्थापित हुए। ये सभी भारतीय समाज के अंग हो गये और इनको भारतीय समाज में सम्मान जनक स्थान प्रदान किया गया।

वर्ण व्यवस्था

ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी से लेकर सातवीं शताब्दी के मध्य भारतीय समाज में अनेक नवीन परिवर्तन हुए। परम्परागत चार वर्णों के अतिरिक्त वर्ण-संकर जातियों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हुयी। सातवीं शताब्दी ईसवी में सामाजिक जीवन के क्षेत्र में जो परिवर्तन हुए वे मुख्य रूप से आर्थिक घटनाओं पर आधारित थे किन्तु धार्मिक और राजनितिक कारणों से थी सामाजिक जीवन के क्षेत्र में परिवर्तन हुए।[4] छठवीं-सातवीं शताब्दी ईसवी में भौगोलिक गतिशीलता का अभाव हो गया था।[5] ब्राह्मणों के द्वारा लम्बी यात्रा का निषेध मिलता है। समुद्र यात्रा पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया। वैश्यों और शूद्रों में कोई विशेष अन्तर नहीं रह गया था।[6]

ब्राह्मण

नाटकों में भारतीय समाज व्यवस्था के चारों वर्णों का उल्लेख मिलता है। सामान्यत: ब्राह्मणों की स्थिति समाज में प्रतिष्ठा जनक थी। उन्हें आदरणीय स्थान प्राप्त था। नाटककारों ने ब्राह्मणों का जो चित्र खींचा है उससे यह ज्ञात होता है कि अधिकांश ब्राह्मण अध्ययन-अध्यापन, यज्ञ आदि अनुष्ठान में अपना समय व्यतीत करते थे।[7]

वेद-पाठी ब्राह्मण वेदों के साथ समस्त शास्त्रों एवं स्मृतियों का अध्ययन करते थे। विद्याध्ययन की वैदिक परम्परा ब्राह्मणों के निजी घरों और गुरुकुलों में जीवित थी।[8] नाटकों में इस बात का उल्लेख मिलता है कि ब्राह्मण विभिन्न प्रकार के यज्ञों से देवताओं को प्रसन्न करते थे।[9]

ब्राह्मण उनके लिए निर्धारित परम्परागत कार्यों के अतिरिक्त अन्य कार्य करते हुए भी दिखलाये गये हैं। मालविकाग्निमित्रम् नामक नाटक के अनुसार पुष्य-मित्र शुंग परम्परा गत कार्य छोड़कर शासक बन गया था, जो प्राचीन भारतीय वर्ण-व्यवस्था के अनुसार क्षत्रिय का कार्य था।[10] भास के चारुदत्त नाटक[11] और शूद्रक के मृच्छकटिक[12] के अनुसार चारुदत्त ब्राह्मण होते हुए भी वैश्य का कार्य वाणिज्य करने लगा। पराशर स्मृति में आपद् काल में ब्राह्मण को वैश्य कर्म करने की छूट दी गई।[13] शर्विलक नामक ब्राह्मण को चोरी करते हुए दिखलाया गया।[14] इस प्रकार यथार्थ जीवन में ब्राह्मण भी विभिन्न प्रकार के पेशों से जुड़ गये थे। पाँचवी-छठवीं शताब्दी ईसवी के अभिलेखों में भी इस प्रकार के उल्लेख मिलते हैं। वाकाटक तथा कदम्ब वंश के शासक ब्राह्मण वर्ण से सम्बन्धित थे।[15] इन उपर्युक्त संकेतों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वर्ण व्यवस्था के आधार-स्तम्भ टूटने लगे थे। साहित्यिक साक्ष्यों के साथ-साथ अभिलेखीय साक्ष्यों से भी ऐसे संकेत मिलते हैं। गुप्तोत्तर काल के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि वर्ण-व्यवस्था की रक्षा करना राजा का कर्तव्य था।[16] इस प्रकार अभिलेखीय तथा साहित्यिक साक्ष्यों से इंगित होता है कि ब्राह्मण वर्ण के लोग शास्त्रों में विहित अधिकारों तथा कर्तव्यों के अनु-रूप आचरण नहीं करते थे।

क्षत्रिय

परम्परागत प्राचीन भारतीय, समाज-व्यवस्था में दूसरा स्थान क्षत्रियों को प्राप्त था। जिनका कार्य शस्त्र के द्वारा प्रजा की रक्षा करना था। शासक अधिकांशत: क्षत्रिय वर्ण के होते थे। नाटकों में प्रजा पालक, सुयोग्य राजाओं का वर्णन मिलता है।[17] इसके अतिरिक्त दुर्व्यसनी, विलासी और अयोग्य राजाओं का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[18]

नाटकों में राजाओं के वैभव और पारिवारिक जीवन के विषय में जानकारी मिलती है। राजाओं के एक से अधिक पत्नियां होती थी।[19] शासक राज कार्य के अतिरिक्त शिकार खेलने में विशेष रुचि रखते थे।[20] राजा चित्रकला और संगीत कला में भी निपुण होते थे।[21] राज कार्य राजा प्राय: मंत्रियों की सहायता से चलाते थे।[22]

राजनीति और नीति के अनेक सुभाषित नाटकों में प्राय: मिलते हैं। राजा को राज्य का रक्षक कहा गया है। यह कहा गया है कि जैसे ग्वाले के बिना गायों की रक्षा नहीं होती है वैसे ही राजा के बिना प्रजा नष्ट हो जाती है।[23] इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर यह उल्लेख मिलता है कि राजा को राजकार्य में किसी प्रकार की असावधानी नहीं करना चाहिए।[24] इस प्रकार क्षत्रियों, विशेषकर राजा का प्रधान कर्तव्य प्रजा की रक्षा करना बतलाया गया।

नाटकों के अध्ययन से यह परिलक्षित होता है कि वंश अथवा कुल के आधार पर क्षत्रियों का वर्गीकरण होने लगा था। विक्रमोर्वशीयम् नाटक में सोमवंशीय, क्रथ-कैशिक तथा पुरुवंशीय क्षत्रियों का उल्लेख मिलता है।[25] यवन, शक, कुषाण आदि विदेशी जातियाँ समय-समय पर इस देश में आयी थीं और इस देश के सामाजिक जीवन में आत्मसात् हो गईं। उनके सम्बन्ध में ऐसी धारणा है कि वे क्षत्रिय वर्ण में अन्तर्भूत हुई होंगी। मृच्छकटिक में खश-खत्ति, खड़ (शक) चीन, बर्बर खेर- - - मधुघात आदि म्लेच्छ जातियों का उल्लेख मिलता है।[26]

वैश्य

वर्ण-व्यवस्था में तीसरा स्थान वैश्य को दिया गया है। शास्त्रों के अनुसार

कृषि,पशु-पालन, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, व्यापार करना और ब्याज पर रुपया उधार देना वैश्य के प्रमुख कार्य बतलाये गए है।[27] ऐसा प्रतीत होता है कि कृषि और पशु-पालन को वैश्यों ने धीरे-धीरे छोड़ दिया था और व्यापार वाणिज्य उनका प्रमुख व्यवसाय हो गया। वैश्यों के नगरों में अलग मुहल्ले होने का उल्लेख मिलता है।[28] मृच्छकटिक नाटक में बाजार का उल्लेख मिलता है। मुद्राराक्षस[29] और अभिज्ञान शाकुन्तलम्[30] में व्यापार कार्य में संलग्न वैश्यों का उल्लेख मिलता है। मुद्राराक्षस में चन्दन दास और अभिज्ञान शाकुन्तल में धनमित्र नामक व्यापारी का उल्लेख मिलता है।

वैश्य समाज में पर्याप्त रूप से प्रतिष्ठित थे। इसका संकेत इस बात से मिलता है कि वे नगर के न्यायालय में एक सम्मानित सदस्य के रूप में भाग लेते थे।[31] नाटकों में वैश्यों की व्यवसाय के अनुसार उपजातियों का संकेत मिलता है जैसे व्यापारी, सुवर्णकार आदि।[32]

शूद्र

प्राचीन भारतीय सामाजिक-व्यवस्था में शूद्रों को सबसे निचली श्रेणी में रखा गया है। धर्म-शास्त्रों में शूद्रों का एक मात्र कर्तव्य द्विजातियों की सेवा बतलाया गया है किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि वैश्य लोग जब कृषि एवं पशु पालन से विरत हो गये तब शूद्रों ने कृषि एवं पशु-पालन को अपना लिया था।[33] मनु ने आपद्धर्म के रूप में उन्हें क्षत्रिय तथा वैश्यों का कार्य करने का उल्लेख किया है। नाटकों में शूद्र वर्ण की अपेक्षाकृत अच्छी स्थिति का संकेत मिलता है। मृच्छकटिक में वीरक नामक नगर रक्षक नाई है[34] और चन्दनक नाम का नगररक्षक सम्भवतः चर्मकार[35] है। गोपपालक या यादव राजा पालक को मारकर स्वयं राजा बन जाता है।[36] इससे ऐसा संकेत मिलता है कि समाज के निम्न वर्ग के लोग भी अपनी योग्यता और पुरुषार्थ के बल पर समाज में ऊँचा से ऊँचा स्थान प्राप्त कर सकते थे। शूद्र लोगों का वर्गीकरण स्पृश्य और अस्पृश्य दो वर्गों में किया गया है। स्पृश्य लोगों के द्वारा भोजन सम्बन्धी सामग्री ब्राह्मणों द्वारा ग्रहण करना वर्जित नहीं था।[37] अस्पृश्य शूद्र कोटि में चाण्डाल आदि आते थे। जिनका स्पर्श और उनके साथ बात-चीत करना भी वर्जित था। इनकी सामाजिक स्थिति अत्यन्त दयनीय थी।[38] चाण्डाल लोग बस्ती के

बाहर अपना निवास बनाते थे। और ये जब गाँव या नगर में प्रवेश करते थे। तब एक बाँस या लकड़ी से जमीन को ठोंकते हुए चलते थे जिससे लोग उनकी आवाज सुनकर एक तरफ हट जायें।[39] चीनी यात्री फाहियान और ह्वेनसांग ने भी शूद्रों को इस प्रकार की दयनीय सामाजिक स्थिति का उल्लेख किया है।[40]

कायस्थ

नाटकों के अध्ययन से कतिपय पेशेवर समूहों के विषय में जानकारी मिलती है। इनमें से कायस्थ एक है। ऐसा कहा गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि जो भी लेखक का काम करते थे, कायस्थ कहे जाते थे।[41] मृच्छकटिक में कायस्थ का उल्लेख न्यायालय के लेखक के रूप में हुआ है।[42] अन्यत्र मृच्छकटिक कायस्थ की निन्दा करते हुए कहा गया है कि वेश्या, हाथी, कायस्थ, भिक्षु, चाट और गधा जहाँ ये रहते हैं, वहाँ दुष्ट भी वृद्धि को प्राप्त नहीं होते हैं‌‌ (सज्जनों का तो कहना ही क्या है?)[43] विशाखदत्त के मुद्राराक्षस नाटक में शकटदास नामक कायस्थ लेखक का उल्लेख मिलता है जो अमात्य राक्षस का प्रिय व्यक्ति था।[44] इससे यह भी ज्ञात होता है कि कायस्थ नामक लेखक सुलेख लिखने में निष्णात होते थे। मुद्राराक्षस के अनुसार प्रयत्न पूर्वक लिखे जाने पर भी वेदपाठी ब्राह्मणों के अक्षर निश्चित रूप से अस्पष्ट होते हैं किन्तु शकटदास नामक कायस्थ के लिखे हुए अक्षर अपनी सुन्दर बनावट के कारण दर्शनीय है।[45] मुद्राराक्षस में चित्रगुप्त का भी उल्लेख मिलता है जिसका कार्य लेख के प्रारूप को परिमार्जित करना बतलाया गया है।[46] इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि गुप्त कालीन अभिलेखों में प्रथम कायस्थ का उल्लेख मिलता है जो संभवत: शिक्षित समाज के प्रतिनिधि के रूप में विषय परिषद का सदस्य होता था।[47] यह कहना कठिन है कि कायस्थों की पाँचवी-छठवीं शताब्दी ईसवी में एक पृथक जाति बन गई थी, अथवा वे पेशेवर समूह के सदस्य थे।

स्त्रियों की दशा

नाटकों के अध्ययन से भारतीय सामाजिक-व्यवस्था में स्त्रियों की स्थिति पर भी किंचित् प्रकाश पड़ता है। नाटको में अधिकांश स्त्री पात्र प्राकृत भाषा में संवाद बोलते हैं।[48] इससे उनके सामाजिक स्तर का कुछ अनुमान किया जा सकता है क्योंकि प्रथम और मध्यम श्रेणी के पुरुष संस्कृत भाषा का प्रयोग करते थे। केवल सामान्य

श्रेणी के पुरूष पात्र प्राकृत भाषा का प्रयोग करते हैं। संवादों की भाषा सम्बन्धी यह योजना रूढ़िगत परम्परा का प्रतीक हो सकती है। दूसरी सम्भावना यह है कि स्त्रियों की शिक्षा धीरे-धीरे समाप्त होती गयी और ऐसी स्थिति में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति पर इससे प्रभाव पड़ा। नाटकों में स्त्रियों को विभिन्न परिस्थितियों में चित्रित किया गया है। कुलबधू या पत्नी का स्थान सम्मानजनक था।[49] इसी प्रकार माता के रूप में समाज में स्त्रियों का आदरपूर्ण स्थान था।[50] जन-साधारण में एक पत्नी से विवाह के प्रथा थी किन्तु राजा लोगों में एक से अधिक स्त्रियों के साथ विवाह की प्रथा थी।[51] नाटकों में इस तरह के संदर्भ प्राय: मिलते हैं। यदा कदा ऐसी स्त्रियों के विषय में भी उल्लेख मिलते हैं जो जीवन पर्यन्त अ अविवाहित रहकर अध्ययन करती थी।[52] स्त्रियां विशेष कर रानियाँ संगीत और चित्रकला में निपुण होती थी।[53] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि राजकुमारियों को संगीत और चित्रकला आदि की शिक्षा दी जाती थी। इस प्रकार के उल्लेख कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम[54] भवभूति के उत्तर राम चरितम्[55] और हर्ष के रत्नावली[56] तथा प्रियदर्शिका[57] नाटिकाओं में मिलते हैं। रत्नावली में नायिका सागरिका को चित्रफलक और तूलिका के साथ-कदलीगृह में महाराज उदयन का चित्र बनाते हुए प्रदर्शित किया गया है। प्रियदर्शिका को गीत, नृत्य आदि में शिक्षित करने का उल्लेख मिलता है किन्तु इस प्रकार की शिक्षा राजकुमारियों और संभ्रान्त वर्ग की स्त्रियों तक ही सीमित थी। नाटकों में घरेलू दासियों के रूप में स्त्रियों का उल्लेख प्राय: मिलता है। मृच्छकटिक नाटक में मदनिका नामक दासी का उल्लेख मिलता है जिसकों वसन्त सेना नामक वेश्या ने धन देकर खरीदा था।[58] शर्विलक एक व्यक्ति ने उसको रूपया देकर दासीत्व से मुक्त कराता है।[59] दास दासियों के साथ सामान्यत: कैसा व्यवहार होता रहा होगा यह मालिकों की स्वभाव पर निर्भर करता रहा होगा। सामान्य परिस्थितियों में उनकी स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी क्योंकि दास्यपुत्र: संस्कृत में गाली का वाचक माना जाता था।[60]

नाटकों में कुल बधुओं के अतिरिक्त गणिकाओं के विषय में भी उल्लेख मिलते है। इनके लिए वेश्या, गणिका, वारिविलासिनि आदि शब्दों का उल्लेख किया गया है।[61] गणिकाएं अपने रूप यौवन, नृत्य-संगीत आदि के द्वारा अपनी जीविका

चलाती थी।[62] गणिकाओं द्वारा अत्यधिक हानि अर्जित करने का उल्लेख मिलता है। मृच्छकटिक में उज्जयिनी की एक वैभवशालिनी गणिका वसन्त सेना की वैभव पूर्ण स्थिति का उल्लेख है। उसकी समृद्धि को देखकर विदूषक कह उठता है कि यह वेश्या का घर है या कुबेर का भवन है।[63].

चौथी-पाँचवीं शताब्दी ईसवी के नाटकों में जो उल्लेख प्राप्त होते हैं, उनसे यह संकेत मिलता है कि उच्च वर्ग की स्त्रियों में पर्दा प्रथा का प्रचलन हो गया था। कालिदास के नाटकों में अवगुण्ठन या घूँघट का उल्लेख मिलता है।[64] बालिकाओं के लिए पर्दे की आवश्यकता नहीं थी[65] किन्तु विवाह के पश्चात् स्त्रियों से पर्दे की अपेक्षा की जाती थी। मृच्छकटिक के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वसन्त सेना नामक गणिका ने बधू बनते ही अपना मुख अवगुण्ठित कर लिया था।[66] इसके विपरीत भास के स्वप्नवासवदत्तम् में उदयन पर्दे के विषय में कहता है कि यदि महारानी ने लोगों के सम्मुख पर्दा किया तो लोग इसको अनुचित कहेंगे।[67] ऐसा प्रतीत होता है कि विशेष अवसरों पर तथा वरिष्ठ लोगों के समय पर्दा करना चौथी-पाँचवी शता० इसवी से सम्मान जनक समझा जाने लगा।

प्रारम्भिक नाटकों में सती-प्रथा के विषय में कोई उल्लेख नहीं प्राप्त होते हैं किन्तु सातवीं शताब्दी के सम्राट हर्ष के द्वारा रचित नाटक और नाटिकाओं में इस प्रकार की के संदर्भ मिलते हैं। नागानंद नामक नाटक में उल्लेख मिलता है कि जीमूतवाहन की मृत्यु के पश्चात् उसकी पत्नी मलयवती ने सती होने की इच्छा प्रकट की थी।[68] प्रियदर्शिका नाटिका में बिन्ध्य केतु के मारे जाने पर उनकी पत्नियां सती हो गयी थी।[69] सती प्रथा के विषय में पाँचवीं शताब्दी के अभिलेखों से भी पुष्टि होती है। मध्य प्रदेश के सागर जिले के एरण नामक स्थान से विदित होता है कि हूणों के विरूद्ध लड़ता हुआ गोपराज नामक सेनापति मारा गया था और उसकी पत्नी सती हो गयी थी।[70] पति की मृत्यु, बन्धुओं के बिछुड़ने, पुत्र न होने और शत्रुओं से किये गए अपमान जनक दुःख के कारण स्त्रियाँ सती होने के लिए उद्यत होती थीं। बाणभट्ट ने कादम्बरी में सती प्रथा का विरोध करते हुए कहा है कि स्त्री सती होकर आत्महत्या करती है। इस पाप के कारण उसे नरक भोगना पड़ता है।[71]

संस्कार

प्राचीन भारतीय सामाजिक जीवन में संस्कार का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था। संस्कार से व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता था। नाटकों में जिन संस्कारों का उल्लेख मिलता है। उनमें, जातकर्म, नामकरण, उपनयन, विवाह आदि का वर्णन प्राप्त होता है। इनमें सबसे महत्वपूर्ण संस्कार उपनयन संस्कार था। उपनयन संस्कार प्राचीन काल में द्विजातियों के लिए विदित था। उपनयन संस्कार के पश्चात् वह बालक द्विज कहलाता था क्योंकि उसका दूसरा जन्म होता था। उत्तर रामचरितम् नामक नाटक में यह उल्लेख मिलता है कि महर्षि वाल्मीकि ने 11 वर्ष की अवस्था में लव-कुश का क्षत्रिय विधि से उपनयन संस्कार करने के पश्चात उनको वेद की विधिवत् शिक्षा दिया था।[72] इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि गौतम के अनुसार ब्राह्मण का जन्म के आठवें वर्ष में, क्षत्रिय का 11 वें और वैश्य का 12वें वर्ष में, उपनयन संस्कार होना चाहिए।[73] मनुस्मृति में भी उपनयन संस्कार की यही अवस्था विभिन्न वर्णों के लिए बतलाई गई है।[74] बालिकाओं का उपनयन संस्कार सम्भवतः बन्द हो गया था। क्योंकि मनु ने लिखा है कि कन्या का विवाह ही उसका उपनयन संस्कार होता है।[75] उपनयन संस्कार के पश्चात् विधिवत् विद्या-अध्ययन करने के पश्चात् जब शिक्षा पूरी हो जाती थी तब समावर्तन संस्कार होता था। जिसमें कुछ धार्मिक कृत्यों के साथ, शिष्य आचार्य का आशीर्वाद प्राप्त करके अपने घर वापस आ जाते थे।[76]

विवाह-संस्कार

सभी वर्णों का विवाह संस्कार होता था। नाटकों में दो प्रकार के विवाह के विषय में संकेत मिलते हैं। (1) ब्राह्म विवाह, और (2) गान्धर्व विवाह। ब्राह्म-विवाह में पिता सच्चरित्र और योग्य वर को अपने यहाँ आमंत्रित करके वस्त्राभूषण से अलंकृत करके कन्यादान करता था।[77] वर में अनेक गुणों की अपेक्षा की जाती थी। उनमें श्लाघ्य कुल, दयावान् गुणवान्, बलवान तथा सुरूपवान् नवयुवक को उपयुक्त पात्र माना जाता था।[78] वर और कन्या के इच्छानुसार विवाह को धर्मशास्त्रों में गान्धर्व विवाह नाम दिया गया।[79] इस प्रकार का विवाह क्षत्रियों

और शासकों में विशेष रूप से लोकप्रिय था। कालिदास के अभिज्ञान् शाकुन्तलम् में शकुन्तला और दुष्यन्त के गान्धर्व विवाह का उल्लेख है।[80] भवभूति के मालती-माधव नामक नाटक में मालती और माधव के गान्धर्व विवाह का उल्लेख मिलता है जिसमें कहा गया है कि परिणय के लिए वर और बधू के परस्पर प्रेम [illegible] [illegible] गया है।[81] हर्ष के नागानंद नामक नाटक में जीमूतवाहन वध मलयवती के प्रणय प्रसंग को प्रस्तुत किया गया है जो बाद में माता-पिता की अनुमति मिलने पर गान्धर्व विवाह के स्थान पर यह विवाह ब्राह्म विवाह में परिवर्तित हो गया था।[82]

नाटकों में कन्याओं की विवाह वय के सम्बन्ध में कोई निश्चित उल्लेख नहीं प्राप्त होते हैं। स्मृतिकारों का सामान्यत: मत है कि रजस्वला होने से पूर्व कन्या का विवाह कर देना चाहिए।[83] इसका यह अर्थ हुआ कि कन्या का विवाह 12-13 वर्ष की आयु तक कर दिया जाना चाहिए। नाटकों में नायिकाओं को युवती और उपभोगक्षमा रूप में प्रस्तुत किया गया है।[84] इससे यह परिलक्षित होता है कि कन्याओं के विवाह सामान्यत: रजस्वला होने से पूर्व नहीं होता था। अनुलोम तथा प्रतिलोम दोनों प्रकार के विवाहों के संकेत मिलते हैं। उच्च वर्ण का पुरूष अपने वर्ण के अतिरिक्त अपने से निम्न वर्ण की कन्या के साथ विवाह कर सकता था। इस प्रकार का विवाह अनुलोम विवाह कहलाता है। जब निम्न वर्ण का पुरूष अपने से उच्च वर्ण की कन्या से विवाह करता था तो उसको प्रतिलोम विवाह कहा जाता था। भास के प्रतिज्ञा यौगन्धरायण नाटक में उदयन का विवाह वासवदत्ता से होने का उल्लेख मिलता है। यह अनुलोम विवाह का उदाहरण है।[85] मालविकाग्निमित्रम् नाटक के अनुसार ब्राह्मण पुष्यमित्र शुंग के पुत्र अग्निमित्र का विवाह विदर्भ के क्षत्रिय नरेश यज्ञसेन की पुत्री मालविका के साथ हुआ था। यह प्रतिलोम विवाह का उदाहरण है।[86] इनके अतिरिक्त सवर्ण विवाह भी होता था। ऐसा प्रतीत होता है कि सवर्ण विवाह को सर्वोत्तम माना जाता था। अभिलेखों से भी ऐसे विवाहों के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। गुप्तवंश की राजकुमारी प्रभावती गुप्ता का विवाह ब्राह्मण वंशी वाकाटक रूद्रसेन के साथ हुआ था।[87] द्वितीय चन्द्रगुप्त की पत्नी कुबेरनागा नागकन्या थीं और नाग क्षत्रिय कहे गए हैं। यह वैश्य-क्षत्रिय प्रतिलोम विवाह का एक उदाहरण है।[88] वैश्य-ब्राह्मण प्रतिलोम विवाह का उदाहरण

गुप्त और कदम्ब कुल के विवाह में देखा जा सकता है। इसका उल्लेख कदम्ब अभिलेखों में गर्व के साथ उल्लेख किया गया है।[89] सामान्य नागरिकों के बीच भी दोनों प्रकार के विवाह प्रचलित थे। नाटकों में गणिका और गणिका-दासी के साथ विवाह का उल्लेख मिलता है। मृच्छकटिक में ब्राह्मण चारुदत्त के गणिका वसन्तसेना और ब्राह्मण शर्विलक के वसन्तसेना की दासी के साथ विवाह का उल्लेख है।[90]

वर्णों के पारस्परिक सम्बन्ध

प्राचीन भारतीय समाज चार प्रमुख वर्णों में विभाजित था। इनके अतिरिक्त अनुलोम तथा प्रतिलोमविवाहों के फलस्वरूप अनेक जातियों का समाज में उदय हुआ। लोगों में जाति सम्बन्धी ऊँच-नीच की भावना घर कर चुकी थी। विवाह-सम्बन्धों में यथासंभव ऊँच-नीच की भावना का आकलन किया जाता था।[91] समाज में संकर विवाह के फलस्वरूप नये वर्णों और जातियों की कल्पना स्मृतिकारों ने किया था। मनुस्मृति में इस प्रकार की जातियों की एक लम्बी सूची उपलब्ध है जिनमें यवन, शक, चीन और पह्लव नाम भी हैं, जो स्पष्टत: बाहर से आयी विदेशी जातियाँ हैं।[92] इस सूची में रथकार आदि समाज ने जहाँ विदेशियों को आत्मसात् कर लिया था, वहीं उनको अपने से भिन्न माना और साथ ही अपने भीतर विवाह आदि को लेकर विभेद करना भी प्रारम्भ कर दिया था। मृच्छकटिक में खश, खत्तिय, कड, चीन बर्बर, एवं म्लेच्छ आदि विदेशी जातियों के साथ-साथ कर्नाट, द्रविड़, एवं चोल इत्यादि भारतीय क्षेत्रीय जातियों का उल्लेख मिलता है।[93]

वस्त्र

प्राचीन संस्कृत नाटकों के अध्ययन से वस्त्र तथा आभूषण के विषय में भी प्रकाश पड़ता। नाटकों में सूती,[94] रेशमी[95] एवं ऊनी[96] वस्त्रों का उल्लेख प्राप्त होता है। सूती वस्त्र अधिक प्रचलित थे।[97] वस्त्रों में कढ़ाई भी की जाती थी।[98] मुख्य रूप से उत्तरीय और अधोवस्त्र पुरुषों के दो प्रमुख वस्त्र होते थे।[99] कालिदास ने गर्मी के लिए रेशमी या कौशेय वस्त्रों का उपयुक्त बताया है और शीत ऋतु के लिए ऊनी वस्त्र उपयुक्त होते थे।[100] स्त्रियों के वस्त्रों में भाटक और कंचुक का उल्लेख मिलता है।[101]

सैनिकों के वस्त्रों में कोट जिनकों कंचुक चीन चोलक, वारबाण कहा गया है को मुख्य वेशभूषा में तथा अधो वस्त्र के रूप में चूड़ीदार पायजामें की तरह का वस्त्र पहनते थे तंग वस्त्र जिसे अवस्थान या पिंगा कहा जाता था का वर्णन किया गया है।[103] कुषाण एवं गुप्त कालीन सिक्कों में राजाओं को प्राय: इस तरह की सैनिक वेशभूषा में अंकित किया गया है।[104] कंचुक सम्भवत: पैरों तक लम्बा बाँह दार कोट, जिसका गला सामने से बंद रहता था।[105] चीन चोलक सम्भवत: चीन- से लिया गया। हर्ष चरित में राजाओं के चीन चोलक नामक वस्त्र पहनने का उल्लेख मिलता है।[106] यह सम्भवत: कंचुक तथा अन्य प्रकार के वस्त्रों के ऊपर पहना जाता था। वार बाण भी कोट की तरह का सिला हुआ वस्त्र जो कंचुक की अपेक्षा कुछ कम लम्बा घुटनों तक लम्बा कोट होता था।[107] सम्भवत: यह प्राचीन ईरानी वेशभूषा से लिया गया। कुषाणो के समय भारत में ~~प्रचलित थे और~~ गुप्तों के समय ये विशेष ~~रूप से~~ लोकप्रिय हुआ।

आभूषण

नाटकों में स्त्री-पुरुष दोनों आभूषण धारण किये हुए वर्णित हैं। पुरुषों में उच्चकुल के लोग कंकन हार और अँगूठी आदि आभूषण धारण करते थे।[108] राजाओं के ~~वर्णन में~~ गले में मोतियों की माला और कानों में कुण्डल पहनने का उल्लेख मिलता है।[109] बच्चों को अनिष्ट से बचाने के लिए गण्डे, ताबीज बाँधने का उल्लेख ~~मिलता~~ है।[110]

स्त्रियां बहुमूल्य आभूषण, पहनती थीं। स्त्रियों के आभूषण में कुण्डल, नुपूर, हार, कंकन, कमर में करधनी या मेखला आदि आभूषणों ~~के पहनने~~ का उल्लेख प्राप्त होता है।[111] हारयष्टि, हार, रत्नमाला आदि अनेक नामों से हारों का उल्लेख है जो इनके विभिन्न रूप-भेद के सम्भवत: प्रतीक हैं।

नाटक साहित्य में अनेक प्रकार की प्रसाधन सामग्री का उल्लेख मिलता है। अभिज्ञान शाकुन्तलम् में पैरों में लाल रंग का आलता लगाने का उल्लेख प्राप्त होता है।[112] माथे पर सिंदूर सौभाग्यवती स्त्रियों के मांगलिक प्रसाधनों में से एक था। कस्तूरी, लवंग पारिजात, ताम्बूल मुख को सुगंधित करने के लिए उपयोग में लाये जाते थे। ~~114~~ कस्तूरी केसर और कपूर तथा सुवासित चन्दन का लेप स्नान के पूर्व और पश्चात् शरीर में लेप लगाने का उल्लेख

मिलता है।[115] श्रृंगार-प्रसाधन में पुष्पों का स्त्रियों द्वारा प्रचुर प्रयोग मिलता है।[116]

भोज्य तथा पेय पदार्थ

नाटक साहित्य में भोज्य तथा पेय पदार्थों के विषय में यत्र-तत्र जो उल्लेख मिलते हैं। उनसे यह अनुमान किया जा सकता है कि दूध मक्खन, घी और गेहूँ चावल भारतीयों के सामान्य खाद्य पदार्थ थे।[117] नाटकों में विदूषक एक ऐसा पात्र है जो हमेशा खाने की चिंता करता रहता है।[118] नाटकों में भोजन करते हुए दृश्य रंगमंच पर दिखाये जाने का निषेध था। इसलिए कथोपकथन के आधार पर ही भोज्य एवं पेय पदार्थों के विषय में जानकारी मिलती है। शाकाहारी भोजन के अतिरिक्त सामिष (माँस) भोजन का भी उल्लेख मिलता है।[119] किसी विशिष्ट व्यक्ति के आगमन पर गोमांस युक्त मधु पर्क से स्वागत करने की परम्परा थी।[120] केवट आदि मछली पकड़ते और उसका माँस खाते थे।[121] यज्ञ में पशुओं की बलि दी जाती थी।[122] केवल जन साधारण में ही शराब पीने की प्रथा नहीं थी।[123] बल्कि मालविकाग्निमित्रम् की पत्नी इरावती को शराब के नशे में दिखलाया गया है। नगरों में शराब की विधिवत् बिक्री के लिए दुकाने होती थीं।[125]

फलों में आम, जामुन, अनार, अंगूर, कटहल आदि का उल्लेख मिलता है।[126] इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि इन फलों का दैनिक जीवन में उपयोग होता रहा होगा।

गुप्त काल में भारत की यात्रा में आये चीनी यात्री फाहियान ने इस बात का उल्लेख किया है कि देश के अधिकांश लोग माँस और मदिरा का उपयोग नहीं करते थे न ही लहसुन प्याज खाते थे।[127] केवल चाण्डाल ही ऐसा करते थे। इसके विपरीत सातवीं शताब्दी में हर्ष के समय भारत आये चीनी यात्री ह्वेनसांग ने लिखा है कि पेय पदार्थों में सुरा-पान का प्रचलन था। द्राक्षासव और ईख का रस ब्राह्मण तथा बौद्ध पीते थे। क्षत्रिय ईख की बनी हुयी सुरा और वैश्य तथा समाज के निम्न वर्ग के लोग अन्य प्रकार की मदिरा का सेवन करते थे।[128]

तपस्वी और आश्रम के निवासी कंद-मूल, जंगली फल, श्यामाक धान और नीवार नामक जंगली धान के चावल का भोजन करते थे। संक्षेप में यह कहा जा सकता हैं कि ये समाज में संभ्रान्त लोगों में सुमिष और निरामिष दोनों प्रकार का भोजन प्रचलित था। समाज के उच्च और निम्न दोनों वर्गों के लोग पेय के रूप में किसी न किसी प्रकार की मदिरा का सेवन करते थे।

मनोरंजन के साधन

मनोरंजन के साधनों के विषय में भी नाटकों से कुछ जानकारी प्राप्त होती है। मनुष्य अपने जीवन में नीरसता को मिटाने के लिए मनोरंजन के साधनों का सहारा लेता है। नाटकों में उद्यान-यात्रा, पशु-पक्षी पालन, मृगया या शिकार, द्यूत-क्रीड़ा ये मनोरंजन के प्रमुख साधन मिलते है। दिल बहलाने के लिए लोग बाग-बगीचों में घूमने के लिए निकलते थे जिसको उद्यान कहा गया है।[129] दो प्रकार के उद्यान होते थे। राजमहल से लगे प्रमदवन (उद्यान) जहाँ राजा इच्छानुसार अपना मनोरंजन किया करते थे। प्रमदवन में जाने का मार्ग राज-महल से लगा हुआ होता था। कदाचित् उसमें जाने के लिए गुप्त मार्ग भी होता था ताकि राजा सब की आँख बचाकर जा सके। प्रमदवन में नाना प्रकार के वृक्ष, लता कुंज एवं पुष्प होते थे और उनमें बैठने के लिए शिला-फलक रहते थे।[130] सरोवर और फौव्वारों (वारियंत्र) की व्यवस्था होती थी एवं उनमें अनेक प्रकार के पक्षी भी रहते थे।

प्रमदवन की तरह ही नगरों में सार्वजनिक उद्यान होते थे जो सामान्य नागरिकों के लिए खुले रहते थे। ये नगर के एक छोर पर होते थे और दूर-दूर तक फैले रहते थे इनमें वापी, कूप, दीर्घिका एवं तड़ाग आदि होते थे।[131] इन उद्यानों में भी क्रीड़ा शैल होते थे। उद्यानों में कदाचित वारियंत्र की व्यवस्था होती थी जिससे निकाला हुआ जल उद्यान के पेड़-पौधों की सिंचाई के काम आता था।

मृच्छकटिक नाटक में उज्जयिनी की वेश्या वसन्त सेना के घर में मनोरंजनार्थ पक्षीशाला का उल्लेख मिलता है। जिसमें शुक-सारिका, कोयल, तीतर, काक, चातक, मोर, हँस एवं कबूतर आदि[132] पक्षी पाले जाने का वर्णन मिलता है। इससे ऐसा संकेत मिलता है कि धनी व्यक्तियों के घरों में मनोरंजन के लिए पक्षियों को पालतू

बनाया जाता है।

राजाओं में मनोरंजन का एक प्रिय साधन मृगया या जंगली पशुओं का शिकार करना था। अभिज्ञान शाकुन्तलम् में इसे मनोरंजन का एक अच्छा साधन बतलाया गया है।[133] मृगया कुछ लोगों की दृष्टि में विनोद था और कुछ लोगों की दृष्टि में व्यसन था। मृगया के अनेक सुन्दर अंकन गुप्त काल के शासकों के सोने के सिक्कों पर देखने को मिलते हैं। इन सिक्कों पर व्याघ्र, सिंह और गैंडे का शिकार करते हुए अंकन मिलता है।[134] शासकगण धनुष-बाण अथवा तलवार से शिकार करते थे, यह भी उन से ज्ञात होता है। कभी-कभी शिकार घोड़े अथवा हाथी पर भी बैठकर किया जाता था। मृग का शिकार तो सामान्य बात थी। अन्य जंगली पशुओं का भी शिकार किया जाता था।[135]

द्यूत-क्रीड़ा मनोरंजन का एक अन्य साधन था। मृच्छकटिक में जुआ खेलने का अत्यन्त विस्तार से वर्णन मिलता है।[136] ऐसा प्रतीत होता है कि द्यूत क्रीड़ा एक विधि-सम्मत कार्य था। इसमें हार जाने पर रुपया न देने पर न्यायालय में विधि-वत् मुकदमा चलाया जा सकता था और न्यायालय हस्तक्षेप करके जीती हुई धनराशि दिलाने का प्रबन्ध करते थे।[137]

सार्वजनिक उत्सव एवं महोत्सव मनोरंजन के अन्य साधन थे जो वर्ष में अनेक बार होते थे। कौमुदी महोत्सव एक प्रमुख उत्सव था। विशाखदत्त के मुद्राराक्षस नाटक में कौमुदी महोत्सव नामक उत्सव के शरद ऋतु की पूर्णमासी को पाटलिपुत्र में मनाये जाने का वर्णन मिलता है।[138] इसमें नाच-गाना होता था और नगर को अलंकृत किया जाता था।[139] हर्षकृत रत्नावली नाटिका में कौशाम्बी में कौमुदी महोत्सव मनाये जाने का प्रसंग मिलता है किन्तु उस में शरद ऋतु में न होकर वसन्त ऋतु के सन्दर्भ में इसका उल्लेख प्राप्त है। ऐसी मान्यता है कि वसंतोत्सव वसन्त ऋतु में फाल्गुन महीने की पूर्णमासी से लेकर वसंत पंचमी पर्यन्त मनाया जाता था ताकि होलिका नामक राक्षसी से शिशुओं की रक्षा हो सके। वसन्त ऋतु के आगमन पर उत्सव मनोरंजन का प्रसंग मिलता है, किन्तु शकुन्तला के वियोग में दुष्यन्त ने उत्सव मनाने पर रोक लगा दिया था।[141] इस प्रकार समय-समय पर उत्सव मना-कर भी लोग अपना मनोरंजन करते थे।

नाटकों में प्राय: यह उल्लेख मिलता है कि विभिन्न संस्कृत नाटकों का प्रदर्शन मनोरंजन के लिए किसी विशेष पर्व, उत्सव, राज्याभिषेक, विवाह, पुत्र-जन्म आदि अवसर पर किया जाता था।[142] इस प्रकार ऐसा संकेत मिलता है कि नाटकों का आयोजन भी समय-समय पर मनोरंजन के साधन के रूप में किया जाता था।

शिक्षा एवं साहित्य

प्राचीन भारत में शिक्षा का पर्याप्त महत्व रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में वेद-वेदांग आदि विषयों की शिक्षा देने के साथ ही दर्शन पुराण, धर्म शास्त्र, व्याकरण ज्योतिष काव्य और राजनीति शास्त्र से सम्बन्धित अर्थ शास्त्र आदि की शिक्षा दी जाती थी।[143] इसक अतिरिक्त नृत्य, गीत, वाद्य की शिक्षा, संगीत के रूप मे और चित्र कला आदि की शिक्षा दिये जाने का उल्लेख नाटकों में मिलता है।[144]

नाटकों के अध्ययन से प्राचीन भारतीय शिक्षा-व्यवस्था के विषय में जो संकेत मिलते है उनसे यह ज्ञात होता है कि ऋषियों के आश्रम शिक्षा के केन्द्र होते थे। जहाँ पर अध्ययन के लिए विद्यार्थी जाते थे। अभिज्ञान शाकुन्तलम् में कालिदास ने कण्व ऋषि के आश्रम का उल्लेख किया है। जहाँ पर विद्यार्थी अध्ययन के लिए आते थे।[145] कण्व ऋषि को इसमें कुलपति कहा गया है। प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार कुलपति उस आचार्य को कहते थे जो दस हजार विद्यार्थियों का पालन पोषण और उनकी शिक्षा दीक्षा का उत्तरदायित्व निभाते थे।[146] आश्रम गाँव के बाहर किसी नदी या जलाशय के तट पर स्थित होता था। आश्रम में पेड़ पौधे और जंगली जानवर निर्भय होकर विचरण करते थे। मुद्राराक्षस नाटक में आचार्य चाणक्य आश्रम का उल्लेख मिलता है जिसमें ब्रह्मचारी विद्यार्थियों के निवास का उल्लेख मिलता है।[147] इसी प्रकार उत्तर रामचरितम् नाटक में अगस्त्य एवं वाल्मीकि ऋषि के आश्रम का वर्णन मिलता है।[148]

इन आश्रमों में छात्रों के प्रवेश के क्या नियम थे और पठन-पाठन की क्या व्यवस्था थी। इसके विषय में स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं मिलते हैं किन्तु जो छिटपुट संदर्भ मिलते है उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि सामान्यत: उपनयन संस्कार के पश्चात् विद्यार्थियों को प्रवेश दिया जाता था और इसीलिए विद्यार्थियों को बटु कहा गया है।[149]

अध्ययन के विषयों में उत्तर रामचरितम् में त्रयी विद्या का उल्लेख मिलता है। जिससे यह संकेत मिलता है कि ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद इन तीन वेदों का अध्ययन-अध्यापन अधिक लोकप्रिय था।[150] अथर्व वेद को वैदिक संहिताओं में स्थान कुछ बाद में प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त तीन विद्याओं का भी उल्लेख है जिसमें धर्म शास्त्र, अर्थ शास्त्र और कृषि तथा वाणिज्य का ज्ञान कराने वाली व्यवहारिक विद्याओं का संदर्भ लिया जा सकता है।[151] कालिदास ने रघुवंश में परम्परागत विद्याओं की संख्या 14 बताई है। जिसमें 4 वेद, 6 वेदांग मीमांसा न्याय, पुराण और धर्म शास्त्र ये मिलाकर 14 अध्ययन के प्रमुख विषय थे।[152] अन्य समकालीन ग्रंथों में 64 विद्याओं का उल्लेख है। जिनमें इतिहास, पुराण के साथ-साथ रामायण महाभारत जैसे महाकाव्यों का अध्ययन भी सम्मिलित किया गया था।

राजकुमारों के लिए अध्ययन के लिए विद्याओं की एक लम्बी सूची मिलती है। कादम्बरी में राजकुमार चन्द्रापीड ने जिन विद्याओं का अध्ययन किया था उनमें व्याकरण, षड्दर्शन, धर्म शास्त्र, अर्थ शास्त्र आयुर्वेद, कथा, नाटक, आख्यिका, काव्य रामायण महाभारत, इतिहास पुराण गान्धर्व, वेद, सामुद्रिक शास्त्र, आदि के साथ-साथ आयुधों का संचालन, रथ चर्या, हाथी और घोड़े की सवारी, नृत्य-गायन, वादन, चित्रकर्म, पुस्तक-लेखन शकुनि-शास्त्र रत्न परीक्षा आदि का उल्लेख किया गया है।[153] इसी प्रकार दण्डी के दशकुमार चरित में अनेक विद्याओं का उल्लेख किया गया है, जिनमें काव्य नाटक, पुराण, धर्म शास्त्र, ज्योतिष शास्त्र, नीति शास्त्र, दर्शन शास्त्र, आख्यान, आख्यिका इतिहास-पुराण नाटक, चित्र कला, वाद्यकला, संगीत, मणि और रत्न परीक्षा, हाथी घोड़े, रथ आदि पर सवारी करने की क्षमता, अस्त्र-शस्त्र संचालन, चोरी, जुआ, कपट आदि सभी अध्ययन के विषय थे।[154] चीनी यात्री ह्वेनसांग ने यह उल्लेख किया है कि अध्ययन के लिए पाँच विद्याओं को अनिवार्य रूप से पढ़ना पड़ता था । व्याकरण या शब्द विद्या {2} शिल्प विद्या {3} चिकित्साविद्या {4} हेतु या ज्योतिष विद्या और {5} अध्यात्म विद्या। नाटकों में बौद्ध और जैन धर्मग्रंथों का उल्लेख नहीं दिया गया है जिनका अध्ययन अवश्य होता रहा होगा।[155]

प्रथम शताब्दी ईसवी से सातवी शताब्दी ईसवी के बीच के समय में ऐसा प्रतीत होता है कि वेदों का अध्ययन अध्यापन, ब्राह्मणों तक ही सीमित हो गया था। क्षत्रिय मुख्य रूप से अर्थ शास्त्र, धर्म शास्त्र और अस्त्र शस्त्रों के संचालन से सम्बन्धित विद्याओं का अध्ययन करते थे। वैश्यों को सामान्य शिक्षा के अतिरिक्त व्यापारिक उन्नति के लिए भौगोलिक ज्ञान गणना तथा भाषाओं की जानकारी और व्यापार सम्बन्धी, क्रय विक्रय आदि की जानकारी मुख्य रूप से दी जाती थी। शिल्पियों आदि की तकनीकी शिक्षा शिक्षार्थी शिल्पियों की कार्यशाला में उनके साथ ही रहकर सीखते थे।[156]

नाटकों में आश्रमों में स्थित विद्यालयों का उल्लेख मिलता है। इस संदर्भ में कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तलम् में कुलपति कण्व के आश्रम का उल्लेख किया है जो मालिनी नदी के तट पर स्थित था।[157] यह आश्रम ऋषिकेश या हरिद्वार के पास कहीं रहा होगा। उत्तररामचरितम् अगस्त्य और वाल्मीकि ऋषियों के आश्रमों का उल्लेख यहाँ पर विद्यार्थी उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते थे। मुद्राराक्षस नाटक में आचार्य चाणक्य के आश्रम का वर्णन किया गया है।[158] हर्ष द्वारा रचित नागानंद नाटक में कुलपति कौशिक के आश्रम का उल्लेख प्राप्त होता है।[159] ये आश्रम विद्वान ब्राह्मणों के एकान्त वास की परम्परा से विद्याके केन्द्र के रूप में विकसित हुए थे। आश्रमों के कुलपति प्रायः गृहस्थ होते थे। इन आश्रमों की दैनिक जीवन चर्या में सामान्यतः राजा भी नहीं हस्तक्षेप करते थे। आश्रम गाँव से कुछ दूर स्थित थे जहाँ विद्यार्थियों को आवास और भोजन कीव्यवस्था उपलब्ध थी।

प्राचीन काल में लड़कियों को भी लड़कों के समान ही शिक्षा दी जाती थी किन्तु संस्कृत नाटकों में लड़कियों की शिक्षा का जो संकेत मिलता है उससे यह कहा जा सकता है कि राजकुमारियों और सम्भ्रान्त वर्ग की कतिपय लड़कियां ही शिक्षा प्राप्त करती थी।[160] उत्तर रामचरितम् में आत्रेयी का[161] और नागानंद नाटक में मलयवती[162] का उल्लेख प्राप्त होता है जो उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही थी।

चौथी से सातवी शताब्दी ईसवी के बीच में ग्राम दान-पात्रों में जिन ब्राह्मणों को भूमिदान दिये जाने का उल्लेख है, वैदिक शाखाओं का उल्लेख है; जिससे यह प्रतीत होता है कि ब्राह्मण वेदों का अध्ययन कर रहे थे।[163]

शिक्षा प्राय: मौखिक रूप से दी जाती थी, किन्तु पुस्तकों के लेखन का प्रचलन था। कपड़े के पट्टी पर स्याही से लिखने का उल्लेख मिलता है, इसके अतिरिक्त ताड़ पर भोज पत्र और ताम्र पत्र आदि का लिखने के लिए उपयोग किया जाता था।[164] दान दाता अपने दान को कभी-कभी पत्थर के टुकड़ों पर भी अंकित कर देते थे। शासक अपनी उपलब्धियों को प्राय: प्रशस्तियों के रूप में पत्थर की शिलाओं और स्तम्भों पर अंकित करवा देते थे।[165]

प्राचीन भारत में शिक्षा के विकास में बौद्ध विहार, जैन मठों का भी योगदान रहा है। नाटकों में इसके संदर्भ में प्राय: बहुत कम उल्लेख मिलते हैं, किन्तु अन्य समकालीन साक्ष्यों से यह ज्ञात होता है कि अनेक बौद्ध विहार शिक्षण के प्रसिद्ध केन्द्र थे। जिनमे छठवीं-सातवी शताब्दी ईसवी में नालन्दा का विशेष रूप से महत्व था।[166] नालन्दा में चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी शिक्षा ग्रहण की थी उसने नालन्दा के विद्यापीठ के विषय में विस्तृत विवरण दिया है। उसके अनुसार यहाँ पर दस हजार विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते थे। भारत के अतिरिक्त चीन आदि अन्य देशों के विद्यार्थी भी यहाँ पर थे। यहाँ विशाल पुस्तकालय था और कई गाँव दान में मिले हुए थे जिनकी आय से विद्यार्थियों को भोजन और आवास की नि:शुल्क सुविधा प्राप्त थी।[167] नालन्दा के अतिरिक्त वलभी शिक्षा का एक अन्य प्रसिद्ध केन्द्र था। जो पश्चिमी भारत-में वर्तमान गुजरात में स्थित है। वलभी प्रधानत: बौद्ध धर्म की शिक्षा का प्रमुख केन्द्र था।

सन्दर्भ

1• मजूमदार, आर0 सी0 [संपादक] दि वैदिक एज लंदन, 1951 पृष्ठ
2• कोसाम्बी, डी0 डी0 दि कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन ऑव एंश्यन्ट इंडिया इन हिस्टोरिकल आउट लाइन्स, लंदन 1965 पृष्ठ 147
3• ठाकुर, विजय कुमार, अर्बनाइजेशन इन एंश्यन्ट इंडिया दिल्ली 1981 पृष्ठ 150-51
4• शर्मा रामशरण पूर्व मध्यकालीन भारत में सामाजिक परिवर्तन दिल्ली 1974 पृष्ठ 4-5
5• शर्मा, रामशरण पूर्वोद्धरित पृष्ठ 8
6• काणे, पी-वी0 धर्मशास्त्र का इतिहास जिल्द पृष्ठ 934
7• अभिज्ञान शाकुन्तलम् अंक 4, उत्तर रामचरितम् अंक 3
8• नागानन्द अंक 1, उत्तर रामचरितम् अंक 3
9• अभिज्ञान शाकुन्तल अंक 4 एवं अंक 7
10• मालविकाग्निमित्रम् अंक 5
11• चारुदत्त अंक 2
12• मृच्छकटिक अंक 3 सार्थवाह सुतस्य-------
13• पराशरस्मृति 2•2
14• मृच्छकटिक अंक 3
15• दि वाकाटक गुप्त एज [संपादक] मजूमदार, आर0 सी0 एंड अल्तेकर, ए0स0 दिल्ली 1960 पृष्ठ 201
16• थपल्याल, के0 के0 इंस्क्रिप्शन्स ऑव दि मौखरीज, लेटर गुप्ताज, पुष्यभूति एंड यशोवर्मन ऑव दि कनौज, दिल्ली 1985 पृष्ठ 35-37
17• प्रतिज्ञा यौगन्धारायण, अंक 4 अविभारक अंक 1, एवं 4, अभिज्ञान शाकुन्तल अंक 1, अंक 7
18• मृच्छकटिक अंक 3, अंक 8, मुद्राराक्षस अंक 1
19• मालविकाग्निमित्रम् अंक 3, अग्निमित्र की धारिणी तथा इरावती का उल्लेख मिलता है, रत्नावली अंक2, प्रियदर्शिका, अंक 1

20· अभिज्ञान शाकुन्तल अंक 2·5

मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थायोग्यंवपु:,
सत्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चितं भय क्रोधयो:।
उत्कर्ष: स च धन्विनां यदिष्व: सिध्यन्ति लक्ष्ये चले
मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग विनोद: कुत:।

21· मालविकाग्निमित्रम् अंक 1, अभिज्ञान शाकुन्तल, अंक 6, रत्नावली अंक 2, प्रियदर्शिका, अंक 3

22· प्रतिज्ञा यौगन्धरायण अंक 1, अभिज्ञान शाकुन्तलम्, अंक 6, मुद्रा राक्षस अंक 1, रत्नावली अंक 1, प्रियदर्शिका अंक 4

23· मुद्राराक्षस, अंक 3

24· प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अंक 3

25· मालविकाग्निमित्रम्, अंक 5

26· मृच्छकटिक, अंक 6

27· मनुस्मृति, 8·10

28· मृच्छकटिक अंक 3

29· मुद्राराक्षस, अंक 7

30· अभिज्ञान शाकुन्तलम्, अंक 6

31· मृच्छकटिक, अंक 10

32· मृच्छकटिक, अंक 4

33· मनुस्मृति 4·61

34· मृच्छकटिक, अंक 6·22 शीर्णशिलातलहस्त:,पुरूषाणां कूर्चग्रन्थिसंस्थापन:
कर्तरीव्यापृतहस्तस्त्वमपि सेनापति र्जात:।।
(टूटे पत्थर के टुकड़े को उस्तरा तेज करने के लिए)
हाथ में रखने वाले, पुरूषों की दाढ़ी बनाने वाले,
कैंची चलाने में व्यस्थ तुम नाई होकर भी सेनापति
(नगर रक्षक) हो गए हो।)

35· मृच्छकटिक अंक 6·23

जातिस्तव विशुद्धा, माताभेरी,पितापि ते पटह:।
दुर्मुख करटक भ्राता, त्वमपि सेनापतिर्जात:।।

(तुम्हारी जाति सचमुच पवित्र है)
भेरी माता है, पटह पिता है, करटक (एक वाद्ययंत्र विशेष) भाई है। तुम (चर्मकार होकर) भी सेनापति (नगर रक्षक सैनिक) हो गए हो।)

36• मृच्छकटिक, अंक 6

37• याज्ञवल्क्यस्मृति 2: 10-13

38• आझा राय बहादुर गौरीशंकर हीराचन्द्र, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, इलाहाबाद 1953 पृष्ठ 47

39• ओझा, पार्श्र्वोद्धरित (1953) पृष्ठ 50

40• बील, एस0 बुद्धिस्ट रिकार्डस ऑव दि वेस्टर्न वर्ल्ड पृष्ठ 133-35

41• ओझा, राय बहादुर, गौरीशंकर हीराचन्द्र (1953) पृष्ठ 48

42• मृच्छकटिक, अंक 9

43• मृच्छकटिक अंक 5

गणिका, हस्ती, कायस्थौ, भिक्षुश्चाटो, रासभश्च
यत्रैते निवसन्ति तत्र दुष्टा अपि न जायन्ते।

44• मुद्राराक्षस अंक 1

45• मुद्राराक्षस अंक 1

श्रोतियाक्षराणि प्रयत्नलिखितीन्यपिनियतमस्फुटानि
भवन्ति।- - - -शकटदासेन लिखितो लेख:- - -
दर्शनीयान्यक्षराणि।

46• मुद्राराक्षस अंक 1•20- - - -अधुना एषां नामानि लिखमि चित्रगुप्त: प्रमार्ष्टु:।

47• सरकार डी0 सी0 सेलेक्ट इंस्क्रिप्शन्स (द्वितीय संस्करण) कलकत्ता 1965 पृष्ठ 337

48• संस्कृत नाटक मूल लेखक ए0 बी0 कीथ (अनुवादक) उदयभानु सिंह, दिल्ली। 1965, पृष्ठ 359

49• मृच्छकटिक अंक 4

50• उत्तर रामचरित, अंक 3

51• मालविकाग्निमित्रम् अंक 3

52. उत्तर रामचरितम अंक 2 आत्रेयी अध्ययन के लिए वाल्मीकि के आश्रम से
. अगस्त्य के आश्रम जाती है।
53. आभिज्ञान शाकुन्तलम् अंक 5, नागानंद अंक ।
54. आभिज्ञान शाकुन्तलम् अंक । एवं 4
55. उत्तर रामचरितम् अंक 2
56. रत्नावली अंक 2
57. प्रियदर्शिका अंक ।
58. मृच्छकटिक अंक 3
59. मृच्छकटिक अंक 3
60. मालिकाग्निमित्रम् अंक 4, मृच्छकटिक अंक 5
61. मृच्छकटिक अंक ।, अंक 5, अंक 9
62. मृच्छकटिक अंक 4, अंक 5, मुद्राराक्षस अंक 3
63. मृच्छकटिक अंक 5, किं तावद् गणिकागृहम् अथवा कुबेरभवनपरिच्छेद इति।
64. आभिज्ञान शाकुन्तलम् अंक 5.13
कास्विदवगुंठनवती नातिपरिस्फुट शरीरलावण्या।
65. नागानंद, अंक ।
66. मृच्छकटिक, अंक 10
67. स्वप्नवासवदत्तम् अंक 6
68. नागानंद, अंक 5
69. प्रियदर्शिका अंक ।
70. फ्लीट, जे0 एफ0 कार्पस इंस्क्रिप्शनम इंडिकैरम जिल्द 3.93
भक्तानुरक्ता च प्रिया च कान्ता,
भार्याविलग्नानुगताग्निराशिम्।
71. कादम्बरी [पूर्वभाग] पृष्ठ 364
72. उत्तर रामचरितम् अंक 2
तदनन्तरं भगवतैकादशे वर्षे क्षात्रेण कल्पेनोपनीय
त्रयी विधामध्यापितौ।

73· गौतमधर्म सूत्र 1·6।2

74· मनुस्मृति 2·36

गर्भाद्ष्टमेऽब्दे कुर्वीत् ब्राह्मणस्योपनायनम्।
गर्भादेकादशे राज्ञो, गर्भात्तु द्वादशो विशः।।

75· मनुस्मृति 2·67

76· मनुस्मृति 2·69

77· प्रतिज्ञा यौगन्धरायण अंक 2·5

कन्यायाः वरसम्पतिः पितुः प्रायः प्रयत्नतः।
भाग्येषु शेषमायत्त दृष्ट पूर्व न चान्यथा।।

78· प्रतिज्ञा यौगन्धारायण अंक 2·4

कुलं तावत् श्लाघ्यं प्रथममभिकांक्षे हि मनसा,
ततः सानुक्रोशं मृदुरपि गुणो ह्वेष बलवान्।
ततो रूपे कान्तिं न खलु गुणतः स्त्रीजनभयात्,
ततो वीर्योदग्रं न हि न परिपाल्या युवतयः।।

79· मनुस्मृति 3·27

80· अभिज्ञान शाकुन्तलम अंक 3·20

गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो राजर्षिकन्यकाः।
श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चाभिनन्दिताः।।

81· मालतीमाधव अंक 2

82· नागानन्द अंक 5·38

83· याज्ञवल्क्य स्मृति 3·68

84· प्रतिज्ञा यौगन्धरायण अंक 2·6 मालविकाग्निमित्रम् अंक 2·3, अभिज्ञान शाकुन्तलम् अंक 3·6 प्रियदर्शिका, अंक 1, नागानंद अंक 5

85· प्रतिज्ञा यौगन्धरायण अंक 4

86· मालविकाग्निमित्रम् अंक 1

87· मिराशी, वासुदेव विष्णु, वाकाटक राजवंश और उसके अभिलेख वाराणसी, 1964 पृष्ठ 203

88· गुप्त परमेश्वरी लाल गुप्त साम्राज्य वाराणसी 1970 पृष्ठ 42।

89· सरकार डी0 सी0 सेलेक्ट इंस्क्रिप्शन्स [द्वितीय संस्करण] कलकत्ता 1965 पृष्ठ 478

90· मृच्छकटिक अंक 5, अंक 10

91· प्रतिज्ञा यौगन्धरायण अंक 4

92· मनुस्मृति 10·8–40

93· मृच्छकटिक अंक 6

94· मृच्छकटिक, अंक 4

95· अभिज्ञान शाकुन्तलम् अंक 1

96· मालविकाग्निमित्रम्, अंक 5

97· अमरकोश 1·63

98· अविमारक अंक 7

99· मुद्राराक्षस अंक 3

100· ऋतुसंहार 5·3

101· अभिज्ञान शाकुन्तलम् अंक 1, अंक 4

102· मृच्छकटिक, अंक 6

103· अग्रवाल, वासुदेवशरण, हर्षचरित: एक सांस्कृतिक अध्ययन [द्वितीय संस्करण] पटना 1964 पृष्ठ 82

104· मोती चन्द्र सार्थवाह, पटना 1953 पृष्ठ 151 एवं 176 , 105 अग्रवाल, वासुदेवशरण पूर्वोद्धरित [1964] पृष्ठ 93

105· अग्रवाल, वासुदेवशरण पूर्वोद्धरित [1964] पृष्ठ 93

106· मोती चन्द्र भारतीय वेशभूषा, वाराणसी 1967 पृष्ठ 150

107· अग्रवाल, वासुदेव शरण, पूर्वोद्धरित [1964] पृष्ठ 82

108· अभिज्ञान शाकुन्तलम् अंक 4, अंक 6 मालविकाग्निमित्रम् अंक 5, प्रतिज्ञायौगन्धरायण अंक 1,

109· प्रतिमानाटक, अंक 3, अविमारक, अंक 8

110· बालचरित अंक 3, अभिज्ञान शाकुन्तलम अंक 7

111· मृच्छकटिक अंक 4, अंक 5, मालविकाग्निमित्रम् अंक 3, विक्रमोर्वशीयम्, अंक 5

112· अभिज्ञान शाकुन्तलम्, अंक 4, मालविकाग्निमित्रम् अंक 3, विक्रमोर्वशीयम्
अंक 4·16

113· नागानन्द, अंक 5

114· प्रतिज्ञा यौगन्धरायण अंक 2 अविमारक, अंक 7

115· स्वप्नवासवदत्तम् अंक 2, मालविकाग्निमित्रम्, अंक 3 प्रियदर्शिका अंक 1,
अंक 6, नागानन्द अंक रत्नावली अंक 2

116· मालविकाग्निमित्रम्, अंक 6 अभिज्ञान शाकुन्तलम् अंक 3, अंक 6, नागानन्द
अंक 1

117· प्रतिज्ञा यौगन्धरायण, अंक 4, अविमारक अंक 2, बालचरित अंक 3
अभिज्ञान शाकुन्तलम् अंक 3, विक्रमोर्वशीयम् अंक 4,
मृच्छकटिक अंक 4 मुद्राराक्षस अंक 5

118· अविमारक अंक 5, प्रतिज्ञायौगन्धरायण अंक 3, मालविकाग्नि मित्रम् अंक 3,
विक्रमोर्वशीयम अंक 4, अभिज्ञान शाकुन्तलम अंक 2

119· प्रतिज्ञा यौगन्धरायण, अंक 4
अमृत कल्लकेन घृतमरिचलवणरूषितो मांसखण्डोमुखे प्रक्षिप्तश्च।

120· उत्तर रामचरितम् अंक 4
समांसो मधुपर्क इत्याम्नाय बहुमन्यमाना श्रोत्रियायाभ्यागताय वत्सतरीं महोक्षं वापचन्ति गृहमेधिनः। तं हि धर्मं धर्मसूत्रकाराः समामनन्ति। {मधुपर्क मांस के साथ देना चाहिए" इस वेद वाक्य का विशेषसम्मान करने वाले गृहस्थ लोग श्रोत्रिय अतिथि के लिए दो साल की बछिया को अथवा बड़े बैल को पकाते हैं। धर्मशास्त्रकार इस धर्म की आज्ञा देते हैं।}

121• विक्रमोर्वशीयम् अंक 3 "छिन्न हस्ते मत्स्ये पलायिते निर्विण्णो धीवरो भणति- - - -अभिज्ञान शाकुन्तलम्, अंक 6 अहं जालोद्गालादिभिर्मत्स्य बन्धनोपायैः कुटुम्बभरणं करोमि।- - - -विस्रगन्धी गोधादी मत्स्यबन्ध एव निः संशयम्।

122• अभिज्ञान शाकुन्तलम्, अंक 6•।

123• सहजं किल यद् विनिन्दितं न खलु तत्कर्म विवर्जनीयम्। पशुमारणकर्म दारुणोऽनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रियः।।

123• प्रतिज्ञा यौगन्धरायण अंक 4•।

धन्याः सुराभिर्मत्ता, धन्याः सुराभिरनुलिप्ताः।
धन्याः सुराभिः स्नाता, धन्याः, सुरभिः संज्ञापिताः।।
(भाग्यशाली है वे जो मदिरामत्त होते हैं, धन्य है वे जो मदिरा से अनुलिप्त हैं, वे धन्य हैं जो सुरा से अवरुद्ध कंठ है।)

124• मालविकाग्निमित्रम्, अंक 3

125• प्रतिज्ञायौगन्धरायण अंक 4,

कण्डिलशौण्डिकी खल्वामराद्धा या राजवाहनं गृहीत्वा सुरां ददाति। - - - -पानागारान्निष्क्रान्तो दृष्टोऽस्मि मम श्वसुरेण सुरुष्टेण (मदिरा बेचनी वाली का ही अपराध है जो राजवाहन को लेकर शराब देती है।- - - -मदिरालय से निकलता हुआ मैं अपने ससुर से देखा गया हूँ जो बहुत नाराज था।)

126• मृच्छकटिक अंक 4

127• लेग्गे, जेम्स, रिकार्डस ऑव बुद्धिस्ट किंगडम आक्सफोर्ड 1886 पृष्ठ 43

128• बील, एस0 पूर्वोद्धरित भाग । पृष्ठ 178

129• विक्रमोर्वशीयम्, अंक 2,

130• विक्रमोर्वशीयम् अंक 2

131• मृच्छकटिक, अंक 7

132• मृच्छकटिक अंक 4 वसन्तसेना के सातवें प्रकोष्ठ में अनेक पालतू पक्षियों के पाले जाने का उल्लेख मिलता है।

133• आभिज्ञान शाकुन्तलम्, अंक 2

134• अल्तेकर, ए० एस० कैटालॉग ऑव दि गुप्ता गोल्ड क्वायन्स इन दि बयाना होर्ड बम्बई 1954 पृष्ठ 50

135• आभिज्ञान शाकुन्तलम्, अंक 2

136• मृच्छकटिक अंक 4

137• मृच्छकटिक अंक 9

138• मुद्राराक्षस अंक 3, प्रवृत्त कौमुदीमहोत्सव रमणीयतरं कुसुमपुरम्- - - -

139• मुद्राराक्षस, अंक 3• 10

धूर्तैरन्वीयमाना स्फुटचतुर कथाकोविदै वैशनार्यो,
नालंकुर्वन्ति रथ्या: पृथुजघनभराक्रान्तिमन्दै:
स्वामिनो मुक्तशंकर: सांक स्वीभिर्भजन्ते विधिम-
भिलषितं पार्वणं पौरमुख्या:।।

140• रत्नावली, अंक 1

141• आभिज्ञान शाकुन्तलम् अंक 6

142• कीथ, ए० बी० {हिन्दी अनुवाद} पूर्वोद्धरित पृष्ठ 335

143• मनुस्मृति 2• 10, याज्ञवल्क्यस्मृति 1• 131

144• आभिज्ञान शाकुन्तलम् अंक 6, नागानंद अंक 1

145• आभिज्ञान शाकुन्तलम् अंक 1

146• मनुस्मृति 2• 11

147• मुद्राराक्षस अंक 1

148• उत्तर रामचरितम् अंक 2

149• उत्तर रामचरितम् अंक 4

150• उत्तर रामचरितम् अंक 2

151• मनुस्मृति 3•232, 9•329

152• रघुवंश सर्ग 5-20-21

153· राम वर्ण शुक्ल बाणभट्ट की कृतियों में प्रतिबिम्बित समाज एवं संस्कृति
इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी0 फिल उपाधि
हेतु स्वीकृत शोध प्रबन्ध {अप्रकाशित} 1991 पृष्ठ 418

154· दशकुमार चरित प्रथम उच्छावास पृष्ठ 38-39

155· वाटर्स, टी0 ह्वेन सांग्स ट्रेवेल्स इन इंडिया भाग 1 लंदन, 1905 पृष्ठ
154-55

156· मजूमदार, आर0 सी0 कारपोरेट लाइफ इन एंशयंट इंडिया कलकत्ता 1918
पृष्ठ 20-25

157· अभिज्ञान शाकुन्तलम् अंक 1

158· मुद्राराक्षस, अंक 1

159· नागानंद, अंक 1

160· मालविकाग्निमित्रम् अंक 2, प्रियदर्शिका अंक 1

161· उत्तर रामचरितम् अंक 2

162· नागानन्द अंक 1

163· अल्तेकर ए0 एस0 एजूकेशन इन. एंशयन्ट इंडिया वाराणसी 1930 पृष्ठ 50

164· अल्तेकर, ए0 एस0 पाश्वोद्धरित पृष्ठ 56

165·सरकार, डी0 सी0 पूर्वोद्धरित पृष्ठ 10

166· वाटर्स, टी0 पूर्वोद्धरित पृष्ठ 156

167· वाटर्स, टी0 पाश्वोद्धरित, पृष्ठ 157

तृतीय अध्याय

आर्थिक जीवन

आर्थिक जीवन

संस्कृत नाटकों में आर्थिक जीवन के विषय में क्रम-बद्ध और व्यवस्थित उल्लेख नहीं प्राप्त होते हैं किन्तु यत्र-तत्र जो संदर्भ मिलते हैं उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि कृषि और पशुपालन आर्थिक व्यवस्था के प्रमुख आधार थे। इनके अतिरिक्त शिल्प तथा व्यापार एवं वाणिज्य आर्थिक जीवन से सम्बन्धित अन्य उल्लेखनीय क्रिया- कलाप थे।

कृषि

कृषि के अन्तर्गत कृषि सम्बन्धी भूमि की किस्मों और कृषि में उगाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के अनाजों, फल-फूल का विवरण प्राप्त होता है जिसको प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त फसल की सिंचाई, खेती की देख-रेख और बागों में विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधों के लगाये जाने, पेड़-पौधों की देख-रेख, सिंचाई व्यवस्था, जंगली पेड़ पौधों के संदर्भ में जानकारी का संक्षेप में विवेचन किया गया है।

कृषि एवं पशुपालन के[1] लिए इस काल के ग्रंथों में वार्ता शब्द का प्रयोग मिलता है जिसका तात्पर्य प्रमुख आर्थिक क्रियाओं से लिया जा सकता है। इस प्रकार कृषि एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य था। गंगा के उपजाऊ मैदान में विभिन्न प्रकार की फसलें उगायी जाती थीं जिसमें धान, गेहूँ, जौ और गन्ने के संदर्भ में मुख्य रूप से उल्लेख प्राप्त होते हैं। इनके अतिरिक्त सूती वस्त्र बनाने के लिए कपास की खेती की जाती थी। धान की विभिन्न प्रकार की किस्मों की कृषि के संदर्भ में उल्लेख मिलते हैं। प्रमुख किस्मों में शालि[2], ब्रीहि[3], और नीवार[4] का उल्लेख मिलता है। शालि सम्भवतः शीघ्र पकने वाली धान की किस्म थी। ब्रीहि जड़हन धान था जिसकी रोपाई की जाती थी, नीवार सम्भवतः जंगली रूप से स्वयं उगने वाला जंगली धान था। नाटकों से प्राप्त साक्ष्य की पुष्टि अन्य समकालीन

साहित्यिक स्रोतों से होती है। कालिदास के रघुवंश महाकाव्य में शालि का उल्लेख मिलता है।[5] वराहमिहिर की बृहत्संहिता में भी धान की विभिन्न किस्मों का विवरण प्राप्त होता है।[6]

गेहूं और जौ की खेती शीत ऋतु में होती थी। धान के पश्चात यह दोनों प्रमुख खाद्यान्न थे। मृच्छकटिक में जौ की खेती के साक्ष्य उपलब्ध होते हैं।[7]

गन्ने की कृषि भी सम्भवतः व्यापक स्तर पर की जाती थी। गन्ने की कृषि के संदर्भ में अन्य साक्ष्यों से भी प्रकाश पड़ता है। बृहत्संहिता[8] और अमर कोश[9] के साक्ष्यों से यह इंगित होता है कि गन्ना इस काल की एक प्रमुख फसल थी। रघुवंश महाकाव्य में शालि नामक धान की रखवाली करती गन्ने की छाया में बैठी कृषक बालाओं का उल्लेख प्राप्त होता है।[10] गन्ने के रस से गुड़ और शक्कर (खाँड़) बनाये जाने का उल्लेख इस काल के ग्रंथों में मिलता है।[11]

कपास के उत्पादन का परोक्ष रूप से संकेत मिलता है।[12] सूती वस्त्रों के उल्लेख के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि कपास का उत्पादन मालवा और सौराष्ट्र के क्षेत्रों में होता था।

अनाज की अन्य किस्मों में सावाँ या श्यामाक धान्य,[13] तिल,[14] उड़द, तथा तिलहन में सरसों का उल्लेख मिलता है। नाटकों में तो उल्लेख नहीं प्राप्त होता किन्तु इस काल के अन्य साहित्यिक स्रोतों से ककड़ी, लौकी, कोहड़ा, लहसुन और पान की कृषि का उल्लेख मिलता है।[15]

सिंचाई

खेतों की सिंचाई कुओं, तालाबों और छोटी-छोटी नालियाँ (कुल्या) निकाल कर की जाती थी।[16] आश्रम और बाग के पेड़ पौधों के चारों ओर थाले (आलबाल) बनाकर घड़ों से पानी लाकर उनकी सिंचाई करने का उल्लेख प्राप्त होता है। अभिज्ञान शाकुन्तल में उल्लेख मिलता है कि कण्व ऋषि के आश्रम में ऋषि-कन्यायें अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक घड़ों से पानी भरकर पेड़ पौधों की सिंचाई कर रहीं थी।

अकाल:-

कृषि को सूखा[18] बाढ़ आदि से नुकसान होता था। इसके अतिरिक्त पालतू और जंगली पशु खेती को नुकसान पहुँचाते थे।[19] चिड़िया और चूहे भी खड़ी फसल को खेतों में नुकसान पहुँचाते थे। बाढ़ के संदर्भ में वराहमिहिर की बृहत्संहिता के साथ साथ स्कन्दगुप्त के समय के जूनागढ़ अभिलेख में उल्लेख प्राप्त होता है।[20]

फसल की कटाई के सम्बन्ध में परोक्ष संकेत मिलता है। फसल कट जाने के बाद खेत में गिरे हुए अन्न कणों जिन्हें शिल कहा जाता था, को इकट्ठा करके जीवन निर्वाह करने वाले तपस्वियों का वर्णन प्राप्त होता है। चिड़ियों द्वारा खेत से जो अन्न के दाने खींचे ले जाये जाते थे और उनके घोसलों के नीचे जमीन पर इसका जो कुछ भाग गिर जाता था उसको "उंच्छ " कहते हैं। उंच्छ को इकट्ठा करके ऋषि मुनि अपना जीवन-निर्वाह किसी प्रकार से करते थे।[21]

विभिन्न प्रकार की दैवी और प्राकृतिक विपदाओं से किसान की फसल प्रायः नष्ट हो जाती थी। ऐसी स्थिति में विपत्ति में पड़े हुए किसान की सहायता करना राजा का एक पुनीत कर्त्तव्य माना जाता था।[22]

पेड़-पौधे:-

नाटकों में रोपे गए और जंगली दोनों प्रकार के पेड़ का उल्लेख प्राप्त होता है।बाग-बगीचों में लगे हुए पेड़-पौधों में आम, पलाश, बरगद, पीपल, अनार, कटहल आदि का उल्लेख मिलता है।[23] इसके अतिरिक्त कदलीवन का उल्लेख मिलता है।[24]

नगरों में और उनके आस-पास उपवन और बाग बगीचे होते थे। राजमहल के साथ लगे हुए उपवन को प्रमदवन कहते थे।[25] प्रमदवन के साथ क्रीड़ा पर्वत का उल्लेख किया गया है।[26]

जंगलों से जलाऊ लकड़ी , वन-उपज जंगली पशुओं की खाल, औषधियाँ आदि प्राप्त होते थे।[27] जंगलों के महत्व को देखते हुए उनकी देख रेख के लिए अभिलेखों में गौल्मिक नामक अधिकारी की नियुक्ति का उल्लेख मिलता है जिसका काम जंगलों की देख-रेख करना था।[28]

पशुपालन

कृषि के साथ-साथ पशुपालन प्राचीन भारतीय अर्थ-व्यवस्था का एक प्रमुख आधार था। पशु-पालन कृषि कार्य के अतिरिक्त भार-ढोने दूध मांस, चमड़े आदि के लिए पाले जाते थे। पालतू पशुओं में गाय, बैल, भैंस, भेड़, बकरी, घोड़े , ऊँट, हाथी, गधे, कुत्ते आदि उल्लेखनीय हैं जिन्हें विभिन्न कार्यों के लिए पालते थे।[29]

जंगली पशुओं में शेर, बाघ, सुअर, बारहसिंगा, गैंडा, गीदड़, जंगली हाथी के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के हिरन थे।[30] जंगली पशुओं का शिकार राजा लोग अपने मनोरंजन के लिए करते थे। आश्रम के निवासी जंगली पशुओं, विशेषकर हिरणों के शिकार को उचित नहीं मानते थे।[31] जलचरों में मछली,[32] कछुआ, घड़ियाल आदि का उल्लेख मिलता है। मछलियों को पकड़ने का कार्य केवल लोग मांस के लिए करते थे।[33] पक्षियों में तोता, मोर, कबूतर, कोयल, [illegible], हंस आदि का उल्लेख मिलता है, जिनमें तोते और मोर आदि पक्षी लोग पालते थे।[34] जंगली पशुओं के मांस के अतिरिक्त उनके चमड़े, दाँत और हड्डियों आदि का उपयोग तत्कालीन लोग विभिन्न कार्यों के लिए करते थे।[35]

इस काल के अन्य साहित्यिक आधारों से इस बात का संकेत मिलता है कि जंगलों में निवास करने वाली वन-जातियाँ,[36] केवट[37] और मदारी[38] आदि अपनी जीविका के लिए जंगली पशुओं और पक्षियों का शिकार, जलचरों को पकड़ने और पक्षियों तथा सांप आदि को पकड़कर और इनको बेचकर अपनी जीविका चलाते थे।

शिल्प

शिल्प के संदर्भ में छिटपुट रूप से यत्र-तत्र कुछ साक्ष्य उपलब्ध होते हैं, जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि लकड़ी, धातु, पत्थर, वस्त्र और मिट्टी की वस्तुओं के बनाने के शिल्प के विषय में प्राचीन संस्कृत नाटकों के अध्ययन से प्रकाश पड़ता है।

सूती वस्त्र उद्योग

वस्त्र उद्योग के संदर्भ में नाटकों से सूती वस्त्रों के विषय में बहुत कम प्रकाश पड़ता है किंतु समकालीन अन्य स्रोतों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सूती वस्त्र, विविध प्रकार के सूती वस्त्र तैयार किये जाते थे। अमरकोश में जुलाहा[39] और उसके द्वारा सूती वस्त्र बुनने की प्रक्रिया[40] का उल्लेख प्राप्त होता है। समाज के सम्पन्न वर्ग के लोग जहाँ महीन सूती वस्त्रों का प्रयोग करते थे, वहीं निर्धन लोग मोटे सूती वस्त्रों का प्रयोग करते थे। सूती वस्त्रों की सिलाई दर्जी करते थे। गुप्त काल के मूर्ति कला और सोने के सिक्कों पर अंकित आकृतियों से यह इंगित होता है कि इस काल के लोग लम्बा कोट वारबाण और अधो वस्त्र के रूप में चुन्नटदार पायजामे की तरह का वस्त्र पहनते थे।[41] इसके अतिरिक्त पुरुष धोती और दुकूल नामक वस्त्र भी धारण करते थे। स्त्रियां प्रायः साड़ी पहनती थीं। साड़ी के अतिरिक्त चोली (कंचुक) स्त्रियों की एक अन्य प्रमुख पोशाक थी।[42]

रेशमी वस्त्र

नाटकों में रेशमी वस्त्र का उल्लेख विशेष रूप से प्राप्त होता है। रेशमी वस्त्र के लिए चीनांशुक शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है।[43] चीनांशुक अत्यन्त झीना और सुंदर वस्त्र होता था। अंशुक और चीनांशुक ये दोनों रेशम के कीड़ों द्वारा तैयार धागों से निर्मित वस्त्र थे। मृच्छकटिक में उल्लेख मिलता है कि संभ्रांत वर्ग के युवक रेशम के बने हुए वस्त्र प्रायः धारण करते थे।[45] रेशमी वस्त्र विवाह के अवसर पर,[46] धार्मिक, महोत्सवों[47] और धनी स्त्री-पुरुषों द्वारा हमेशा पहने जाते थे। रेशमी वस्त्र निर्माण के संदर्भ में गुप्त काल के मंदसौर अभिलेख से भी प्रकाश पड़ता है।[48] इस अभिलेख में उल्लेख मिलता है कि गुजरात (लाट) में निवास करने वाली शिल्पियों की एक श्रेणी वहाँ से इस लिए मंदसौर चली आई थी कि गुजरात में रेशमी वस्त्रों की मांग कम हो गयी थी।[49] कुछ विद्वानों ने इस साक्ष्य को इस रूप में प्रस्तुत किया है कि गुप्त काल में आर्थिक स्थिति खराब हो गयी थी, और शिल्पियों की श्रेणी के अनेक सदस्यों को मजबूर होकर लाट छोड़कर मालवा के क्षेत्र में आना पड़ा।[50] ये शिल्पी रंग-बिरंगे रेशमी वस्त्र बनाते थे। नाटकों में प्राप्त रेशमी वस्त्रों से

उपर्युक्त विवरणों से यह इंगित होता है कि रेशमी वस्त्र बनाने का शिल्प विकसित अवस्था में था।

ऊनी वस्त्र

सूती और रेशमी वस्त्रों के अतिरिक्त ऊनी वस्त्र भी इस काल में निर्मित होते थे।[51] वस्त्रों में मुख्य रूप से विभिन्न प्रकार के वस्त्र उल्लेखनीय हैं।

वल्कल एवं चर्म

तपस्वी और आश्रम के लोग पेड़ों की छाल से बने हुए वस्त्र (वल्कल) पहनते थे।[52] इसके अतिरिक्त कृष्ण मृग के चर्म और व्याघ्र चर्म का वस्त्रों के रूप में उपयोग के साक्ष्य प्राप्त होते हैं।[53]

पहनने के वस्त्रों के अतिरिक्त अन्य कई काम और ओढ़ने तथा बिछाने के लिए प्रयुक्त होने वाले वस्त्रों का उल्लेख मिलता है। चादर (प्रच्छदपट) का उल्लेख इस प्रकार के वस्त्र के उदाहरण के रूप में किया जा सकता है।[54]

सूती व ऊनी वस्त्रों को विभिन्न प्रकार के रंगों से रंगते थे। रंगने के लिए खनिज पदार्थों और वृक्षों की जड़ों और लकड़ी से रंग तैयार किये जाते थे।[55] रंगाई के अतिरिक्त वस्त्रों की कढ़ाई और चित्रकारी की जाती थी।[56] चित्रकारी में रेखाकृतियां, फूल पत्तियाँ तथा, पशु-पक्षियों का अंकन किये जाने का उल्लेख मिलता है।[57]

काष्ठ शिल्प

नाटकों में काष्ठकला के सन्दर्भ में जो साक्ष्य यत्र-तत्र मिलते हैं उससे काष्ठ-शिल्प के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। सामान्यतः समाज के सम्भ्रांत वर्ग से संबंधित होने के कारण ऐसी स्थिति में उल्लिखित साक्ष्य हैं। मुद्रा राक्षस नाटक में काष्ठ कला के महत्त्व को विशेष रूप से दर्शाया गया है। मुद्राराक्षस नाटक में उल्लेख मिलता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्याभिषेक के अवसर पर चाणक्य ने पाटलि-पुत्र के सभी बढ़ई लोगों को राजमहल और नगर के द्वारों के निर्माण कार्य में लगा दिया था।[58] इसमें यह भी उल्लेख मिलता है कि बढ़इयों ने राजमहल और नगर

से द्वारों को लकड़ी की सुंदर कढ़ाई से अलंकृत किया था। इसके अतिरिक्त लकड़ी से बड़ी-बड़ी मूर्तियों का निर्माण किया था।[59] इसी प्रसंग में शिल्पियों के प्रमुख दारूकर्मा का उल्लेख मिलता है।[60] गुप्त काल में भारत की यात्रा पर आने वाले चीनी यात्री फाहियान ने इस बात का उल्लेख किया है कि सिंध नदी के पश्चिमी तट पर स्थित एक स्थान को उसने गौतम बुद्ध की लकड़ी की बनी हुई एक अत्यन्त विशालकाय मूर्ति देखी थी।[61] इस प्रकार के उल्लेख में यदि कोई अतिशयोक्ति हो तो सम्भव नहीं किंतु इससे यह संकेत मिलता है कि काष्ठ शिल्प अत्यन्त विकसित अवस्था में था।[62] घरेलू साज-सामान लकड़ी के बनते थे। बाँस और बेंत की बनी हुई वस्तुओं का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[63]

धातु शिल्प

सोने, चाँदी, ताँबा, लोहा आदि धातुओं की विभिन्न प्रकार की वस्तुएं बनने का उल्लेख प्राप्त होता हैं। सोने की वस्तुएँ बनाने वाले स्वर्णकार विभिन्न प्रकार के आभूषण बनाते थे। स्वर्णकार मुख्य रूप से समाज के धनी वर्ग की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। मुद्रा राक्षस नाटक में यह उल्लेख मिलता है कि विष्णुदास नामक एक प्रसिद्ध सुवर्णकार कुसुमपुर नगर में निवास करता था।[64] मृच्छकटिक नाटक में वसन्त सेना नामक गणिका के सोने से बने हुए आभूषणों का उल्लेख प्राप्त होता है।[65] नाटक के प्रथम अंक में अलंकार न्यास में यह उल्लेख मिलता है कि वह अपने आभूषणों को उतारकर नाटक के नायक चारूदत्त के पास छोड़ देती है।[66] ऐसा कहा जा सकता है कि सुवर्णकार अत्यन्त विकसित अवस्था में रहा होगा। सोने के बने हुए हार नामक आभूषणों का उल्लेख मंदसोर अभिलेख में मिलता है।[67] गुप्त काल की सुवर्ण मुद्राओं के निर्माण में तत्कालीन सुवर्ण कला की विकसित स्वरूप का संकेत प्राप्त होता है।[68]

चाँदी के आभूषण एवं सिक्के गुप्त काल के संदर्भ में प्राप्त होते हैं।[69] सोने चाँदी के आभूषण प्राचीन काल में बचत के रूप में आर्थिक संकट के समय उपयोग के लिए लोग विशेषकर स्त्रियां सुरक्षित रखती थीं।[70]

ताँबे और कांस्य का उपयोग सिक्के, बर्तन और मूर्तियां बनाने के लिए मुख्य रूप से किया जाता था। इसके अतिरिक्त ताम्रपत्र का उपयोग स्थाई महत्व के अभिलेख उत्कीर्ण करने के लिए किया जाता था। ताँबे की बनी हुई अंगूठियाँ और मुहरों का भी निर्माण किया जाता था।[71] ताँबे दर्पण बनाये जाते थे।[72]

हीरा मोती और दूसरे मणि माणिक्य तथा रत्नों का काम भी होता था और आभूषण में रत्नों को जटित करके उन्हें और सुंदर बनाया जाता था। शूद्रक के मृच्छकटिक नाटक में आभूषण बनाने में संलग्न सुवर्णकारों का उल्लेख मिलता है। वैदूर्य, मूँगा, पुष्पराग, इन्द्रनील, कर्केतरक{स्फटिक}, पद्मराग मरकत आदि रत्नों के विषय में शिल्पीजन परस्पर विचार-विमर्श कर रहे हैं। सोने में विभिन्न प्रकार के मणि रत्नों के जड़ने तथा सोने के विभिन्न प्रकार के आभूषण बनाने, तथा मूँगों को सोने पर चढ़ाने का उल्लेख प्राप्त होता है।[73] रत्न जटित नाम अंकित अंगूठियों का उल्लेख नाटकों में मिलता है।[74]

शिल्पियों के प्रशिक्षण और उनके अधिकार आदि के विषय में उल्लेख प्राप्त होते है। शिल्प सम्बन्धी शिक्षा या तो पिता पुत्र को स्वयं अथवा कुशल शिल्पी नौसिखियों को अपनी कार्यशाला में देते थे। और इस प्रकार शिल्प सम्बन्धी औपचारिक शिक्षा प्राप्त हो जाती थी।[75]

मणि एवं रत्न

मणियों और रत्नों को तराशने का शिल्प एक स्वतंत्र हस्त शिल्प के रूप में विकसित था जिसका संकेत नाटकों में यत्र-तत्र प्राप्त होता है।[76] मणियों और रत्नों को धागे में पिरोकर अनेक प्रकार के हार और अन्य आभूषण बनाये जाते थे। प्राचीन भारत के अनेक नगरों के उत्खनन से गोमेद, कीतन, लाजावर्त, स्फटिक आदि मणियों के बने हुए मनके बहुत बड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं।[77] इस प्रकार के आभूषण सम्पन्न लोगों द्वारा धारण किये जाते रहे होंगे। मिट्टी के बने हुए मनके भी मिलते हैं जो मणि रत्नों के {अनुकरण} पर बनाये गये प्रतीत होते हैं। समाज के निर्धन और साधन हीन लोग जिनका उपयोग आभूषणों के रूप में करते थे।[78]

लौह शिल्प

लोहे की विभिन्न प्रकार की वस्तुएं बनाने के संकेत नाटकों के अध्ययन से ज्ञात होते हैं। लुहार समाज का एक महत्त्वपूर्ण सदस्य एवं विशिष्ट शिल्पी प्रतीत होता है।[79] वह खेती के काम आने वाले हँसिया, खुर्पी, फावड़े बनाने के अतिरिक्त सैनिकों के लोहे के साज सामान भी बनाता था। ऐसे उपकरणों में बाण, परशु, अंकुश, शक्ति, प्राश (तलवार) असि, आदि का निर्माण करता था।[80] इस प्रकार यह कह सकते हैं कि जन साधारण से लेकर शासक वर्ग तक अपनी आवश्यकताओं के लिए लोहे के शिल्पिओं पर निर्भर थे।

पत्थर की मूर्तियाँ

पत्थर की मूर्तियों के संदर्भ में नाटकों में कुछ संकेत मिलते हैं।[81] पत्थर की मूर्तियां दो प्रकार की होती थी।[82] 1. पूजा के लिए बनाई गई देवी-देवताओं की मूर्तियां और 2. मथुरा में राजाओं और अन्य विशिष्ट वस्तुओं की पत्थर की मूर्तियाँ बनायी जाती थी।[83] प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व और प्रथम शताब्दी ईसवी के बीच का समय भारत में पत्थर की देवी-देवताओं की मूर्ति के पहले-पहल बड़े पैमाने पर निर्माण के लिए प्रसिद्ध था। इस काल की पत्थर की मूर्तियों में अधिक संख्या गौतम बुद्ध और उनके जीवन से सम्बन्धित मूर्तियों के हैं। इसके पश्चात के काल में हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियों का बड़े पैमाने पर निर्माण होने लगा। इनमें अनेक प्रकार की विशेषताओं का समावेश हुआ।[84]

राजाओं की मूर्तियों का निर्माण कुषाण काल में प्रारम्भ हुआ और आगे आने वाले काल में इस प्रकार की मूर्तियां साहित्यिक साक्ष्यों के अनुसार बनती रहीं किन्तु उनके वास्तविक उदाहरण बहुत कम मिलते हैं।

मिट्टी की मूर्तियां

मिट्टी की मूर्तियों के संदर्भ में नाटकों के अध्ययन से कुछ प्रकाश पड़ता है। अभिज्ञान शाकुन्तलम् में उल्लेख मिलता है कि शकुन्तला का पुत्र भरत मिट्टी के बने हुए रंगीन मोर से खेलता था।[85] इसी प्रकार मृच्छकटिक नामक एक अन्य नाटक

में चारूदत्त के पुत्र रोहसेन की मिट्टी की बनी हुई खिलौना गाड़ी थी।[86] इन साक्ष्यों से यह संकेत मिलता है कि मिट्टी के खिलौने समाज में लोक प्रिय थे। हर्ष चरित में उल्लेख मिलता है कि राज्यश्री के विवाह के अवसर पर खिलौना बनाने वाले मछली, कछुआ, मकर (मगर मच्छ), नारियल, केला और सुपारी के वृक्ष आदि तरह तरह के मिट्टी के खिलौने बना रहे थे।[87] इससे ऐसा संकेत मिलता है कि मिट्टी के खिलौनों की मांग लौकिक और धार्मिक दोनों प्रकार के कार्यों के लिए होती थीं। मिट्टी के खिलौने ऐतिहासिक काल के संदर्भ में लगभग छठवी शताब्दी ई0पू0 से मिलने लगते है।[88] प्रारम्भिक खिलौनों में केवल पशुओं की मिट्टी की मूर्तियाँ मिलती हैं, जिनको मिट्टी की मूर्तियां बनाने वाले शिल्पियों ने हाथों से मोड़कर बनाया था।[89] द्वितीय शताब्दी ईसवी पूर्व से साँचे में ढाल कर मिट्टी की मूर्तियाँ बनायी जाने लगी।[90] प्रथम शताब्दी ईसवी के लगभग मिट्टी की मूर्तियों को बनाने के लिए दोहरे साँचे का उपयोग किया जाने लगा। कभी-कभी मानव मूर्तियों के केवल हाथ, पैर और धड़ अलग-अलग साँचों से बनाये जाते थे। और बाद में उनको आपस में जोड़कर मिट्टी की मूर्ति को अन्तिम रूप दिया जाता था। इस प्रकार मिट्टी, की मूर्तियों के निर्माण में तकनीकी दृष्टि से उत्तरोत्तर विकास दिखलाई पड़ता है। मिट्टी की मूर्तियाँ मनुष्यों और पशुओं दोनों की ही आकृतियों में मिलती है। ऐसी सम्भावना की जाती है कि स्त्री पुरूष के मानव आकार की कतिपय मूर्तियाँ देवी देवताओं की मिट्टी की मूर्तियां हैं जिनको पूजा के लिए बनाया गया रहा होगा।[91] पाँचवी छठवीं शताब्दी के ईंटों के बने हुए कतिपय मंदिरों और स्तूपों में मिट्टी की बनी हुई देवी देवताओं की विशालकाय मूर्तियां लगी हुई मिली हैं। उत्तर प्रदेश के कानपुर जिले में स्थित भीतर गाँव के मन्दिर में इस प्रकार की मिट्टी की मूर्तियां आज भी लगी हुई हैं।[92] कौशाम्बी के घोषित राम बौद्ध विहार से प्राप्त मिट्टी की आरिति और गज लक्ष्मी की बड़ी-बड़ी मूर्तियां मिली हैं। जो इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संग्रहालय में सुरक्षित हैं।[93]

पशु पक्षियों की बहु संख्यक मूर्तियां सम्भवतः पूजा के लिए नहीं बनाई गयीं थीं, बल्कि इनका प्रयोजन मुख्य रूप से जन साधारण के मनोरंजन के लिए खिलौनों

के रूप में रहा होगा।[94] मिट्टी की बनी हुई अन्य वस्तुओं में मिट्टी के बर्तन, मनके और मिट्टी की मुहरें आदि भी उल्लेखनीय हैं।

भवनों के निर्माण के लिए मैदानी भाग में पकी हुई ईंटों का उपयोग किया जाता था। ईंटों के बने हुए आवासीय भवनों और मंदिरों तथा स्तूपों के साक्ष्य मिलते हैं।[96] संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मिट्टी के खिलौने और अन्य वस्तुएं बनाने वाले शिल्पियों को इससे जीविका चलाने का सहारा मिलता है। कुछ शिल्पी निपुण कारीगर रहे होंगे और उन्हें अच्छी आय होती रही होगी अन्य साधारण कारीगर और श्रमिक रहे होंगे।

<u>व्यापार एवं वाणिज्य</u>

नाटकों के अध्ययन से आन्तरिक एवं बाह्य व्यापार पर भी कुछ प्रकाश पड़ता है। आन्तरिक व्यापार के संदर्भ में नगर या कस्बे के बाजार का वर्णन कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम् में मिलता है, जिसमें बाजार को विपणि कहा गया है और यह कहा गया है कि मुख्य मार्ग के दोनों ओर दुकानें स्थित होती थीं।[97] मृच्छकटिक में भी बाजार का इसी प्रकार का उल्लेख प्राप्त होता है।[98] मुद्राराक्षस नाटक से यह जानकारी मिलती है कि चाणक्य ने चन्दनदास नामक एक व्यापारी को नगर श्रेष्ठि नियुक्त किया था।[99] बाजार में क्रय-विक्रय में धोखा-धड़ी और बेईमानी भी होती थी।[100] देश के अन्दर एक भाग से दूसरे भाग में सामान ले जाने के लिए बैलगाड़ी और बोझा ढोने वाले पशुओं का उपयोग किया जाता था।[101] नदियों में पुल न होने के कारण व्यापारिक वस्तुएं नावों के द्वारा पार किया जाता था।[102]

बाह्य व्यापार के सम्बन्ध में जो कतिपय साक्ष्य उपलब्ध हैं उनमें मृच्छकटिक और शाकुन्तला का उल्लेख किया जा सकता है। मृच्छकटिक में मदनिका नामक एक चेरी या सेविका के कथन से यह ज्ञात होता है कि एक नवयुवक व्यापारी ~~से यह ज्ञात होता है कि एक नव युवक व्यापारी~~ ने विभिन्न देशों से व्यापार करके बहुत सम्पत्ति अर्जित किया था।[103] अभिज्ञान शाकुन्तलम् में हस्तिनापुर के एक समुद्र व्यापारी धनमित्र का उल्लेख मिलता है जो समुद्र द्वारा विदेश से व्यापार करता था। समुद्र में जहाज के डूब जाने से उसकी मृत्यु हो गई थी।[104] इन उल्लेखों से

से संकेत मिलता है कि विदेशों से भारतीय व्यापारी व्यापार करते थे। चौथी शताब्दी ईसवी में भारत की यात्रा पर आये चीनी यात्री फाहियान ने बंगाल के ताम्रलिप्ति के बंदरगाह से श्री लंका के रास्ते से स्वदेश के लिए प्रस्थान किया था।[105] जिस जलपोत से उसने यात्रा की थी उसमें 200 यात्री सवार थे। उस जलपोत के साथ कई छोटी-छोटी नाव बँधी हुयी थी जिनका उपयोग भयंकर आंधी तूफान आने के अवसर पर किया जाता था। फाहियान के इस विवरण से ऐसा लगता है कि भारत का समुद्री व्यापार अत्यन्त उन्नत दशा में था। प्रथम शताब्दी ईसवी से लेकर पाँचवी छठवीं शताब्दी ईसवी तक दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों के साथ भारत का महत्त्वपूर्ण व्यापारिक सम्बन्ध था।[106]

साहित्यिक साक्ष्यों की पुष्टि अभिलेखीय साक्ष्यों से भी होती है। अभिलेखों में नगर श्रेष्ठि और सार्थवाह का उल्लेख मिलता है। नगर, श्रेष्ठि नगर का प्रमुख व्यापारी था।[107] जबकि सार्थवाह देश के अन्दर और बाहर का व्यापार करने वाले व्यवसायियों का प्रमुख था।[108]

क्रय-विक्रय सोने, चाँदी और ताँबे के सिक्कों के माध्यम से होता था।[109] फाहियान ने क्रय विक्रय में कौड़ियों के प्रयोग का उल्लेख किया है।[110] उसके अनुसार पाटलिपुत्र के बाजार में कौड़ियों का व्यवहार होता था। ऐसा प्रतीत होता है कि फाहियान का कथन कम मूल्य की दैनिक जीवन की वस्तुओं की क्रय विक्रय की दशा में रहा होगा। अधिक मूल्य की वस्तुओं का क्रय विक्रय चाँदी और सोने के सिक्कों से होता रहा होगा।

सामान्य परिस्थितियों में व्यापारियों का राज्य की ओर से समुचित संरक्षण व सुरक्षा प्रदान की जाती थी। किन्तु जंगली और पर्वतीय क्षेत्रों में चोर-डाकुओं का खतरा सार्थवाह या व्यापारियों के समुदाय को उठाना पड़ता था। "मालविकाग्निमित्रम्" में उल्लेख मिलता है कि विदर्भ से विदिशा जा रहे एक सार्थवाह को मार्ग में संकट का सामना करना पड़ा।[111] एक दिन की यात्रा के पश्चात

व्यापारियों के समुदाय ने एक जंगल में डेरा डाला। अचानक डाकुओं के गिरोह ने व्यापारियों पर आक्रमण कर दिया।[112] व्यापारियों के सुरक्षा सैनिकों ने इनके साथ संघर्ष किया किन्तु अन्त में सुरक्षा सैनिक पराजित हो गये और व्यापारियों की सभी वस्तुएं डाकू छीन ले गये।[113] इस प्रकार कभी-कभी व्यापारियों को संकट का भी सामना करना पड़ता था।[114]

सन्दर्भ

1• कामन्दकीय नीतिसार, 2•20 संपादक जे0 पी0 विद्यासागर, कलकत्ता 1875,
अनुवादक एम0 ए0 दत्त कलकत्ता, 1896

पाशुपाल्यं, कृषिः पन्यं, वार्त्ता वार्त्तानुजीविनाम्।
संपन्नो वार्त्तया साधुर्नवृत्तेर्भयमृच्छति।।

2• रघुवंश 4•20, ऋतुसंहार 3/1•10•16, 4/1•18, 5/1•16

3• रघुवंश 5•8

4• अभिज्ञान शाकुन्तलम् अंक 4 एवा सूर्योदय एवं विजाम्भिता प्रतीष्ट
नीवारहस्ताभिः- - - - ।

5• रघुवंश 1•50

6• बृहत्संहिता 19•4-5, 29•2

7• मृच्छकटिक अंक 4 श्लोक 17

8• बृहत्संहिता 8•30, 19•16-18

9• अमरकोश 4•164

10• रघुवंश 4•20 इक्षुच्छायानिषादिन्य स्तस्य गोप्तुर्गुणोदयम् आकुमार कथोद्घात-
शालिगोप्यो जगुर्यशः।।

11• अमरकोश 9•43, 3•42

12• अमरकोश 4•116, बृहत्संहिता. 5•75

13• अभिज्ञान शाकुन्तलम् अंक 4

14• अभिज्ञान शाकुन्तम् अंक 3

15• अमर कोश 4•118, रघुवंश 4•48

16• मालविकाग्निमित्रम् अंक 3, विक्रमोर्वशीयम् अंक 2

17• अभिज्ञान शाकुन्तल अंक 1, प्रियदर्शिका नाटिका, प्रथम अंक श्लोक 12 -
छायाचक्रं तरूणां हरिणशिशुरुपैत्यालवालाम्बुलुब्धः।

18• प्रियदर्शिका अंक 4 भरतवाक्य, रत्नावली भरतवाक्य, प्रजा की इच्छा के अनुकूल
वर्षा करते हुए इन्द्र पृथ्वी को शस्यशालिनी बनायें।

19· रघुवंश 5·9

नीवारपाकादि कडङ्·गरीयैराम्रुश्यते जानपदैर्न कच्चित।
कालोपपन्नातिथकल्प्य भागं वन्यं शरीरस्थिति साधनं वः।।

20· फ्लीट जे0 एफ0 कार्पस इंस्क्रिप्शनम इंडिकैरम जिल्द लंदन,3, 1888 पृष्ठ 56 स्कन्दगुप्त के काल का जूनागढ़ अभिलेख [गुप्त संवत् 136,137 एवं 138] पृष्ठ 56, श्लोक 26

अथ क्रमेणाम्बु कालमागते, निदाघकालं प्रविदार्यतोयदैः।
ववर्ष तोयं बहु संततं चिरं सुदर्शनं येन विभेद चात्वरात।।

21· रघुवंश 5·8

22· सरकार, डी0सी0 सेलेक्ट इंस्क्रिप्शन्स [द्वितीय संस्करण] कलकत्ता 1965 पृष्ठ 79 "महास्थान फैगमेन्टरी स्टोन प्लाक इंस्क्रिप्शन" तथा पृष्ठ 82, "सोहगोरा ब्रांज प्लाक इंस्क्रिप्शन"

23· मृच्छकटिक अंक 8, अभिज्ञान शाकुन्तल अंक 1, प्रियदर्शिका अंक 2 उत्तर रामचरित अंक 2

24· प्रियदर्शिका प्रथम अंक । श्लोक 9

25· विक्रमोर्वशीयम् अंक 2

26· विक्रमोर्वशीयम् अंक 2

27· अभिज्ञान शाकुन्तल अंक 1,कुमार संभव 5·30,अमरकोश 6·110-111

28· फ्लीट जे0 एफ0 पूर्वोद्धरित पृष्ठ 50 आरुहारिक-औल्किक-गोल्मिक आसन्यायु।

29· अभिज्ञान शाकुन्तल अंक 5, प्रियदर्शिका अंक 4, नागानन्द अंक 1, उत्तर रामचरितम् अंक 4 मृच्छकटिक अंक 4

30· अभिज्ञान शाकुन्तल अंक 5, उत्तर राम चरितम् अंक 5, नागानन्द अंक 2 मृच्छकटिक अंक 4

31· अभिज्ञान शाकुन्तल अंक 1

32· प्रियदर्शिका अंक 1

33· अभिज्ञान शाकुन्तल अंक 6, विक्रमोर्वशीयम् अंक 3

34· मृच्छकटिक अंक 4 वसन्तसेना के सातवे प्रकोष्ठ में पालतू पशुओं का उल्लेख है ।

कबूतर, तोता, मैना, कोयल, तीतर, बटेर, मयूर आदि पक्षियों का उल्लेख है।

35• अभिज्ञान शाकुन्तल अंक 4

36• अमरकोश 10•14

37• अभिज्ञान अंक 6, विक्रमोर्वशीयम अंक 5

38• अमरकोश 7•13

39• अमरकोश 10•6

40• अमरकोश 10•28-29

41• रालिंसन, एच0 जी0 ए कंसाइज हिस्ट्री ऑव दि इंडियन पीपुल ऑक्सफोर्ड 1946 पृष्ठ 66

42• अभिज्ञान शाकुन्तल अंक 1

43• अभिज्ञान शाकुन्तल अंक 1 चीनांशुक

44• अग्रवाल, वासुदेव शरण हर्षचरित:एक सांस्कृतिक अध्ययन बिहारराष्ट्रभाषा परिषद् पटना 1964 पृष्ठ 78

45• मृच्छकटिक अंक 4 पृष्ठ 181

46• मालविकाग्निमित्रम् अंक 5

47• मृच्छकटिक अंक 1

48• फ्लीट, जे0 एफ0 पूर्वोद्धरित [1888] पृष्ठ 81-83

49• फ्लीट, जे0 एफ0 पाश्र्वोद्धरित [1888] पृष्ठ 84

50• शर्मा आर0 एस0 अर्बन डिके, दिल्ली 1987 पृष्ठ 154

51• मालविकाग्निमित्र, अंक 5

52• अभिज्ञान अंक 4

53• नागानन्द अंक 2

54• मृच्छकटिक अंक 4

55• प्रियदर्शिका अंक 2, मृच्छकटिक अंक 1

56• मालविकाग्निमित्र अंक 2, अमरकोश 9•191

57• मृच्छकटिक अंक 4, अमरकोश, 9•17

58• मुद्राराक्षस अंक 4

59• मुद्राराक्षस अंक 2

60• मुद्राराक्षस अंक 2

चन्द्र गुप्तस्य नन्दभवनप्रवेशे चाणक्य हतकेन आहूयाभिहिता: सर्व एवं कुसुमपुर निवासिन: सूत्रधारा:- - - - -सूत्रधारेण दारुवर्मणा- - - संस्कार विशेषै: संस्कृतं प्रथम राजभवनद्वारम्।

61• लेग्गे जेम्स, (संपादक) फाहियान्स रिकार्डस आँव बुद्धिस्टिक किंगडम्स आक्सफोर्ड 1886 पृष्ठ 25

62• अमरकोश 3•61

63• कुमार संभव सर्ग 6•53 तुलनीय वेत्रासन

64• मुद्राराक्षस, अंक 5

65• मृच्छकटिक अंक 1 एवं अंक 4

66• मृच्छकटिक अंक 1

67• फ्लीट, जे0 एफ0 पूर्वोद्धरित (1888) पृष्ठ 84

68• अल्तेकर, ए0एस0 कैटालॉग आँव दि गुप्ता गोल्ड क्वायन्स इन दि बयाना होर्ड बम्बई 1954 पृष्ठ 1-15

69• एलन, जे0 कैटालॉग आँव दि क्वायन्स आँव दि गुप्ता डाइनेस्टी, लंदन, 1914 पृष्ठ

70• अल्तेकर, ए0 एस0 दि पोजीशन आँव दि वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन बनारस 1938 पृष्ठ 365

71• आर्किऑलाजिकल सर्वे आँव इंडिया-एन्नुअल रिपोर्ट-1911-12 पृष्ठ 92

72• मृच्छकटिक अंक 4

सुवर्णरत्नानां कर्मतोरणानि नीलरत्नविनिक्षिप्तानिन्द्रायुध स्थानमिव दर्शयन्ति। वैदूर्य मौक्तिक प्रवालक पुष्परागेन्द्रनील कर्केतरक, पद्मराग मरकत प्रभृतीन् रत्नविशेषानन्योन्यं विचारयन्ति शिल्पिन:। बध्यन्ते जातरूपैर्माणिक्यानि। घट्यन्ते सुवर्णालंकारा:। रक्त सूत्रेण ग्रथ्यन्ते मौक्तिकाभरणानि। घृष्यन्ते धीरं वैदूर्याणि। छिद्यन्ते शंखा:। शाणै: घृष्यन्ते प्रवालका:।

73· रघुवंश 14·37, गोपीनाथ राव, टी0 ए0 जी0 एलिमेन्ट्स आँव हिन्दू
आइकोनोग्राफी वाल्यूम । पार्ट । पृष्ठ 12

74· नारदस्मृति 5·16-20

75· मृच्छकटिक अंक 4

76· अभिज्ञान शाकुन्तल अंक 4, अंक 5 मालविकाग्नि मित्रम् अंक 4

77· दीक्षित, एम0 जी0 "बीड्स फ्राम अहिच्छत्रा, यू0 पी0" एन्शंट इंडिया नं08,
1952 पृष्ठ 33-63

78· मानिक चन्द्र गुप्त बीड्स फ्राम कौशाम्बी इलाहाबाद विश्वविद्यालय की
डी0 फिल0 उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध
1992 पृष्ठ 50

79· बनर्जी, एन0 आर0 आयरन एज इन इंडिया मुंशीराम, मनोहर लाल,
दिल्ली 1965 पृष्ठ 10-25

80· फ्लीट, जे0 एफ0 पूर्वोद्धरित {1888} पृष्ठ 6, प्रयाग प्रशस्ति 1·17

81· प्रतिमानाटक अंक

82· प्रतिमा नाटक, अंक

83· बाजपेयी के0 डी0 एवं दीक्षित, आर0 के0 टूरिस्ट सेन्टर्स इन उत्तर प्रदेश
इलाहाबाद 1956 पृष्ठ 30

84· एन0 पी0 जोशी मथुरा स्कल्प्चर्स, मथुरा 1977 पृष्ठ 40-60

85· अभिज्ञान-शाकुन्तल अंक 7
तदीये उटजे मार्कण्डेयस्यर्षिकुमारस्य वर्ण चित्रितो मृत्तिकामयूरीस्तिष्ठति।
तमस्योपहर।- - - -- शकुन्त लावण्यं पश्य। - - - -अस्य मृत्तिकाम-
यूरस्य रम्यत्वं पश्येति भणितोऽसि।

86· मृच्छकटिक अंक 6

किं ममैतया मृत्तिकाशकटिकया। तामेव सौवर्ण शकटिकां देहि।- - -
तातस्य पुनरपि ऋद्धया सुवर्णशकटिकया क्रीडिष्यसि। तावद् विनोदयाम्येन
- - - - -एतेन प्रतिवेशिगृहपतिदारकस्य सुवर्णशकटिकया क्रीडितम्।
तेन च सा नीता। ततः पुनस्तां याचतो मयेयं मृत्तिकाशकटिका कृत्वा
दत्ता। ततोभणतिरदनिके। किं ममैतया मृत्तिकाशकटिकया। तामेव
सौवर्णशकटिकां देहि, इति।

87· हर्षचरित उच्छ्वास 4·18, अग्रवाल वासुदेव शरण, हर्षचरित: एक सांस्कृतिक अध्ययन (द्वितीय संस्करण) बिहार-राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना, 1964 पृष्ठ 72

[illegible] क्रियमाणमृण्मय
मीनकूर्म मकर नारिकेल कदली पूग वृक्षम्।

88· काला, सतीशचन्द्र, टेराकोटा फिगरिंस फ्राम कौशाम्बी, इलाहाबाद, 1950, पृष्ठ 10-15

89· पाण्डेय, जे0 एन0 पुरातत्व विमर्श (तृतीय संस्करण) इलाहाबाद, 1991 पृष्ठ 480

90· पाण्डेय, जे0 एन0 (1991) पार्श्वोद्धरित पृष्ठ 512

91· काला, सतीशचन्द्र, टेराकोटाज इन द इलाहाबाद म्यूजियम नई दिल्ली 1980 पृष्ठ 25-35

92· ब्राउन पर्सी इंडियन आर्किटेक्चर बुद्धिस्ट एंड हिंदू पीरियड्स (षष्ट संस्करण) बम्बई 1971 पृष्ठ 41-42

93· शर्मा, जी0 आर0 फ्राम हिस्ट्री टु प्रिहिस्ट्री इलाहाबाद 1980 पृष्ठ 50

94· काला, सतीशचन्द्र (1980) पूर्वोद्धरित पृष्ठ 40-42

95· ठाकुर विजय कुमार अर्बनाइजेशन इन ऐंशयन्ट इंडिया दिल्ली 1981. पृष्ठ 130-34

96· अभिज्ञान शाकुन्तल अंक 6

97· मृच्छकटिक अंक 3

99· मुद्राराक्षस अंक 7

100· मृच्छकटिक अंक 5

101· मृच्छकटिक अंक 6

102· रघुवंश सर्ग 1764

103· मृच्छकटिक अंक

104· अभिज्ञान शाकुन्तल अंक 6

105· लेग्गे, जेम्स [1886] पूर्वोद्धरित पृष्ठ 111-13

106· मजूमदार, आर0 सी0 ऐंशयन्ट इंडियन कालोनीज इन दि फार ईस्ट वाल्यूम 1:
लाहौर 1927 पृष्ठ 1-25;
सुवर्णद्वीप भाग 1 एवं 2 ढाका 1937-38
पृष्ठ 10-30, कम्बुज देश मद्रास, 1944 पृष्ठ
20-25, हिन्दू कालोनीज इन दि फार ईस्ट
कलकत्ता, 1944 पृष्ठ 1-16

107· सरकार डी0 सी0 सेलेक्ट इंस्क्रिप्शन्स [द्वितीय संस्करण] 1965 कलकत्ता
पृष्ठ 290-92

108· मोतीचन्द्र सार्थवाह पटना 1953 पृष्ठ. 25

109· एलन, जे0 पूर्वोद्धरित [1914] पृष्ठ

110· लेग्गे, जेम्स· [1886] पूर्वोद्धरित पृष्ठ 43

111· मालविकाग्निमित्रम् अंक 5
सार्थं विदिशागामिनमनुप्रविष्टः । - - - -सपाटव्यन्तरे निविष्टो
गताध्वा वणिग्गणः ।

112· मालविकाग्निमित्रम् अंक 5· 10
तूणीरपट्टपरिणद्ध भुजान्तराल,
मापार्ष्णिलम्बिशिखिबर्हकलापधारि।
कोदण्डपाणि निनदत्प्रतिरोधकाना-
मापातदु: प्रसहमाविरभूदनीकम्।।

113· ततो मुहूर्त बद्धायुधास्ते पराङ्मुखीभूता: सार्थवाहयोद्धारस्तकरै:।

114· लेग्गे, जेम्स [1886] पूर्वोद्धरित पृष्ठ 97·

चतुर्थ अध्याय

धार्मिक जीवन

धार्मिक जीवन

प्रथम शताब्दी ईसवी से लेकर सातवीं शताब्दी ईसवी के काल में प्राचीन भारत में धार्मिक जीवन के क्षेत्र में अनेक उल्लेखनीय बातें दृष्टिगोचर होती हैं। वैदिक याज्ञिक कर्मकांडों की प्रधानता समाप्त हो गई थी। लोगों का ध्यान भक्ति प्रधान धर्म की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। देवताओं के विषय में यह दृष्टिकोण एक महत्वपूर्ण परिवर्तन का सूचक माना जा सकता है। भक्ति में विशेषदेवताओं को प्रसन्न करके उनका वरदान या कृपा प्राप्त की जा सकती थी। भक्ति प्रधान धर्म के उदय का प्रभाव पूजा के ढंग पर भी पड़ा। फूल, फल, नैवेद्य, धूप, दीप, वाद्य, नृत्य तथा गीत आदि के द्वारा देवता की पूजा की जाने लगी। देवताओं की मूर्तियों (अर्चा) का निर्माण प्रारम्भ हुआ। देवताओं की प्रतिमाओं की स्थापना के निमित्त मन्दिर बनने लगे। महायान बौद्ध धर्म में बुद्ध की मूर्ति पूजा का प्रचलन ईसवी सन् की प्रथम शताब्दी में प्रारम्भ हुआ[1]। बौद्धों की ही भाँति जैनों ने महावीर की भक्ति और पूजा विधि को मान्यता प्रदान किया।

हिन्दू समाज में भी इसका व्यापक प्रभाव पड़ा। वासुदेव कृष्ण तथा दाशरथि राम को देवता मान कर उनकी पूजा -भक्ति का आदर्श समाज के सामने प्रथम शताब्दी ईसवी में सामने आया[2]। वैष्णव तथा शैव धर्मों का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। ईसवी सन् की प्रारम्भिक शताब्दियों की एक अन्य उल्लेखनीय बात यह है कि इस काल में विदेशियों ने बड़ी संख्या में ब्रह्मा तथा बौद्ध धर्म को अपनाया था। यह काल ही ऐसा था जिसमें यवन, शक, पह्लव, आभीर, कुषाण आदि अनेक विदेशी जातियाँ भारत में समय-समय पर आईं और भारत में स्थायी रूप से बस गईं[3]।

वैष्णव, शैव, बौद्ध तथा जैन धर्मों के साथ-साथ देवियों की शाक्त धर्म के अंतर्गत स्वतंत्र रूप से पूजा होने लगी। लोक धर्म को धार्मिक मान्यता प्राप्त हो गई। फलतः यक्ष, नाग, भूत, पिशाच, वृक्ष, नदी, पर्वत आदि अनेक प्रकार के लोक देवी देवताओं की पद-प्रतिष्ठा बढ़ी। इन को सार्वजनिक मान्यता प्राप्त हुई। समाज के

लोक
उच्च वर्णों के घरों में इन पूजित देवी-देवताओं का निर्बाध प्रवेश हो गया। तीर्थस्थानों की लोकप्रियता के विषय में साक्ष्य मिलते हैं।

नाटकों के अन्त: साक्ष्यों से धार्मिक जीवन के विषय में जो जानकारी प्राप्त होती है उसकी पुष्टि समकालीन अन्य साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों से होती है। धार्मिक जीवन के विषय में कतिपय ऐसे भी साक्ष्य मिलते हैं जो सर्वथा नवीन हैं। कुछ ऐसे उल्लेख प्राप्त होते हैं जिनकी पुष्टि किसी अन्य साक्ष्य से नहीं होती है। नाटकों से ज्ञात धार्मिक जीवन का परिचय प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

वैष्णव धर्म

वैष्णव धर्म के विषय में नाटकों में यत्र-तत्र उल्लेख प्राप्त होता है। वैष्णव धर्म में भागवत, पंचरात्र, वैखानस और सात्वत आदि प्राचीन सम्प्रदाय थे[4]। नारायण को भगवत् (भगवान्) की संज्ञा दी गयी। इसी नाम पर उनका सम्प्रदाय भागवत कहा गया है। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनरुद्ध और साम्ब के उपासक पंचरात्र कहलाते थे। सात्त्वत् वृष्णियों के उस समाज का नाम था जिसमें कृष्ण उत्पन्न हुए थे। आर0जी0 भण्डारकर के अनुसार भागवत और पंचरात्रों में कोई विशेष भेद नहीं था। सामान्य वैष्णवों में भागवत धर्म ही अधिक लोकप्रिय हुआ।[5]

नाटकों में वैष्णव धर्म के विषय में सबसे प्राचीन साक्ष्य भास की रचनाओं में मिलते हैं। भास के अविमारक[6], बालचरित[7], प्रतिमा[8] और अभिषेक[9] नाटकों की प्रस्तावनों में विष्णु की स्तुतियाँ की गयी हैं। अविमारक की प्रस्तावना में विष्णु के मत्स्य, वराह, नृसिंह वामन और राम के अवतारों की चर्चा की गयी है:[10]

उत्क्षिप्तां सानुकम्पं सलिलनिधिजलादेकदंष्ट्राग्ररूढा-
माक्रान्तामाजिमध्ये निहतदितिसुतामेकपादावधूताम् ।

सम्भुक्तां प्रीतिपूर्वं स्वभुजवश गतामेकचक्राभिगुप्तां
श्रीमान् नारायणस्ते प्रदिशतु वसुधामुच्छ्रितैकातपत्राम् ।।

जिसने मत्स्यावतार में पृथ्वी को जलप्लावन से बचाया, जिसने वराह अवतार में पृथ्वी को अपने दाढ़ के अग्रभाग से उठाया, जिसने नृसिंह अवतार में दितिपुत्र हिरण्यकशिपु आदि का बध किया तथा जिसने वामन अवतार में तीन पद से पृथ्वी को नाप लिया था तथा राम के रूप में अवतार में जिसने पृथ्वी का प्रीति पूर्वक भोग किया, ऐसे श्री नारायण आप पर कृपालु हों।

भास के बालचरितम् की प्रस्तावना में उल्लेख मिलता है कि विष्णु कृतयुग में नारायण के नाम से, त्रेता में तीन पद से पृथ्वी नापने वाले विष्णु (वामन) के नाम से द्वापर में रावण का बध करने वाले राम के नाम से प्रसिद्ध थे, वही विष्णु भगवान कलियुग में दामोदर के रूप में आप की रक्षा करें।[1]-

शंख क्षीरवपु: पुरा कृतयुगे नाम्नातु नारायण -
स्त्रेतायां त्रिपदार्पित त्रिभुवनो विष्णु: सुवर्णप्रभ: ।
दूर्वाश्यामनिभ: स रावणवधे रामो युगे द्वापरे,
नित्यं योऽञ्जनसन्निभ: कलियुगे व: पातुदामोदर: ।।

इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि सामान्यत: राम का अवतार त्रेता में और कृष्ण (दामोदर) का अवतार द्वापर में हुआ, ऐसा माना जाता है। किन्तु यहाँ पर भास ने राम-अवतार का समय द्वापर बतलाया है। ऐसा तभी माना जा सकता है कि राम से तात्पर्य यहाँ कृष्ण से है ।

ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम द्वितीय शताब्दी ईसवी तक लोग अवतारों से भलीभाँति परिचित थे और उनकी पूजा-उपासना भी प्रचलित थी। मत्स्य, वराह, वामन अवतारों तथा राम और कृष्ण चरित सम्बन्धी आख्यानों की लोकप्रियता समाज में थी। कतिपय पुरातात्त्विक साक्ष्यों से भी होती है। द्वितीय शताब्दी ईसवी के नहपान (119-24 ई0) के नासिक अभिलेख में उषवदात के द्वारा रामतीर्थ,

में दान देने का उल्लेख किया गया है[12]। महाभारत में जामदग्नि राम (परशुराम) का निवास स्थान कहा गया है[13]:-

ततः शूर्पारकं गच्छेत् जामदग्न्य निषेवितम् ।
रामतीर्थे नरः स्नात्वा विन्द्याद् बहुसुवर्णकम् ।।

प्रारम्भिक नाटकों में विष्णु के अवतारों के साथ ही साथ शंख, चक्र, कौमोदिकी नामक गदा, नन्दक नाम तलवार तथा शार्ङ्ग नामक धनुष का आयुध पुरुषों के रूप में बाल चरितम् में वर्णन मिलता है[14]। इनके अतिरिक्त विष्णु के वाहन गरुड़ का उल्लेख मिलता है।[15] गरुड़ विष्णु के वाहन के रूप में प्रसिद्ध है। गरुड़ अपना परिचय देते हुए कहते हैं कि[16]:-

अहं सुपर्णो गरुड़: महाजवः,
शार्ङ्गायुधस्यास्य रथो ध्वजश्च ।
पुरा हि देवासुरविग्रहेषु वहामि,
भो विष्णुबलेन विष्णुम् ।।

इस प्रकार गरुड़ विष्णु के वाहन के साथ-साथ उनके रथ की ध्वजा भी है।

शंख, चक्र, गदा के साथ ही साथ धनुष तथा नन्दक नाम तलवार का उल्लेख है। इस में पद्म (कमल) का उल्लेख नहीं है। सभी आयुध पुरुषों का संदर्भ के अनुसार परिचय इस प्रकार है। शंख क्षीरसागर से विष्णु द्वारा स्वयं प्राप्त किया गया। युद्ध में शंख की ध्वनि से देवशत्रुओं (असुर) का नाश हो जाता है[17]:-

अहं हि शंखः क्षीरोदाद विष्णुना स्वयमुद्धृतः ।
मम शब्देन नश्यन्ति युद्धे तु देवशत्रवः ।।

चक्र मध्याह्न सूर्य के समान तेजस्वी त्रिविक्रम (वामन) अवतार तथा समुद्र मंथन के अवसर पर दानव एवं दैत्यों का विनाश किया था:-

चक्रोऽस्मि कृष्णस्य करागशोभी,
मध्याह्नसूर्य प्रतिमोग्रतेजा: ।
त्रिविक्रमे चामृत मंथने च,
मया हता दानवदैत्यसंघा: ।।

विष्णु की कौमोदिकी नामक गदा ने दानवों का विनाश किया था[19]-

कौमोदिकी नाम हरेर्गदाहमाज्ञावशात सर्वरिपून् प्रमथ्य ।
मया हतानां युधि दानवानां प्रक्रीडितं शोणित निम्नगासु ।।

ऐसा कहा जाता है कि विष्णु का धनुष हड्डी का बना हुआ था इसलिए शार्ङ्ग कहलाता था। विष्णु भगवान ने अपने धनुष से हाथी, घोड़े, रथ तथा पदाति से युक्त असुरों की चतुरंगिणी सेना का विनाश किया था[20]

शार्ङ्गोऽस्मि विष्णुकरलग्न सुवृत्तमध्या,
स्त्री विग्रहात् पुरुषवीर्यबलातिदर्पा।
यस्यार्थमाहवमुखेषु मयारिसंघा:
प्रभ्रष्टनागरथवाजिनरा: प्रभग्ना: ।।

नन्दक नामक विष्णु की तलवार ने भी संग्राम में अपना पराक्रम दिखलाया है[21]-

नन्दकोऽहं न मे कश्चित् संग्रामेष्वपराङ्मुख: ।
गच्छामि स्मृतिमात्रेण विष्णुना प्रभविष्णुना ।।

कृष्ण के चरित्र से सम्बन्धित विभिन्न घटनाओं का विवरण भास की नाट्य कृतियों में मिलता है। पूतनावध, केशी बध, कालियनागदमन आदि का उल्लेख बाल चरित में मिलता है।[22] गोवर्धन पर्वत के कृष्ण द्वारा उठाये का उल्लेख भास ने इसी नाटक में किया है[23]।

बाल चरित में वसुदेव कृष्ण के विष्णुत्व का आख्यापन करते हैं[24]:-

ज्येष्ठोऽस्यं मम तनयस्तु रौहिणेयो,
देवक्यास्तनयमिमं च किं न वित्थ ।
उन्नादं त्यजत किमायुधैश्च कार्यं,
कं नार्थं स्वयमिह विष्णुरागताम ।

भास द्वारा विष्णु के अन्य प्रमुख अवतार राम के वर्णन में बालचरित के तत्वों की अनुकृति नहीं हुई है। प्रतिमा नाटक में राम के महत्व तथा उनके पौरुष का वर्णन इस प्रकार किया गया है:[25]

अहो बलमहो, वीर्यमहो सत्त्वमहो जवः ।
राम इत्यक्षरैरल्पैः स्थाने व्याप्तमिदं जगत् ।।

अभिषेक नाटक में राम के अभिषेक का प्रसंग है। इस में राम के विष्णु स्वरूप के वर्णन की अधिक अनुकूल प्रयोग भास को प्राप्त हुआ है। अभिषेक नाटक में रावण राम और लक्ष्मण के शिरों की (मायिक) आकृति दिखाकर सीता को वशीभूत करने का व्यर्थ प्रयत्न करता है। रावण कहता है कि तुम्हारे उद्धारक मर चुके हैं अब तुम्हारा उद्धार कौन करेगा? तब उत्तर में आकाशवाणी होती है, राम; राम[26]।

इस प्रकार भास के नाटकों के अध्ययन से विष्णु के अवतारों- विशेषकर कृष्ण तथा राम के सन्दर्भ में कतिपय उल्लेखनीय तथ्य ज्ञात होते हैं। कृष्ण की कथा में श्रृंगार का अभाव मिलता है जिसका परवर्ती परम्परा में कृष्ण के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। इसी प्रकार राधा का चित्रण भी नहीं मिलताहै: यद्यपि बालचरित के तीसरे अंक में हल्लीशक नृत्य का प्रदर्शन है जिस में गोप और गोपियाँ दोनों भाग लेते थे।[27]। बालचरित में विष्णु के वाहन गरुड तथा पाँच आयुधों के मानव वेष में मंच पर आने की संकल्पना में जहाँ एक और विष्णु की आराधना में किये जाने वाले धार्मिक नृत्य की संस्मृति है, वहीं आयुधपुरुषों के रूप में उनकी कल्पना उल्लेखनीय है। अभिषेक नाटक में राम की विष्णु के रूप में महिमा का गान गंधर्व और अप्सराएँ मिलकर करती हैं।[28]

मथुरा से विष्णु की कुषाण काल की कतिपय प्रतिमाएँ मिली हैं जिनका समय प्रथम द्वितीय शताब्दी ईसवी. माना जा सकता है।[29] मथुरा से विष्णु की ऐसी कई मूर्तियां मिली हैं जिनमें सिर पर मुकुट, शरीर पर आभूषण और नीचे धोती पहने हुए हैं। उनकी चार भुजाओं में से नीचे का दाहिना हाथ अभयमुद्रा में तथा कटि के पास अवलम्बित बायें हाथ में अमृत कलश लिये हुए हैं। ऊपर के दाहिने हाथ में गदा और बायें हाथ में चक्र है[30]। गुप्त काल में वैष्णव धर्म विशेष लोकप्रिय था किन्तु इस काल के नाटकों में वैष्णवधर्म सम्बन्धी साक्ष्य बहुत अधिक नहीं हैं। मुद्राराक्षस नाटक के भरत वाक्य में वराह अवतार का उल्लेख प्राप्त होता है।[31] गुप्त काल के कतिपय अभिलेखों में वैष्णव धर्म की चर्चा है[32]। एरण में वराह की मूर्ति मातृविष्णु भाई धन्य विष्णु द्वारा स्थापित किये जाने का उल्लेख मिलता है।[33] यह मूर्ति और मन्दिर के अवशेष आज भी विद्यमान हैं। वराह मूर्तियाँ दो प्रकार की मिलती हैं: 1-आदि वराह, 2- नृवराह । एरण की यह मूर्ति आदि वराह प्रकार की है।

बुधगुप्त के काल [476-94ई0] के दामोदर ताम्रपत्रलेख में कोकामुख स्वामी और श्वेतवराहस्वामी नामक देवताओं के निमित्त दो मन्दिर निर्माण किये जाने का उल्लेख है।[34] इस प्रकार नाटकों से प्राप्त तथ्यों की पुष्टि अन्य साक्ष्यों से होती है।

शैव धर्म

शैव धर्म में शिव की उपासना विविध रूपों में की जाती थी । शिव के नामों में शर्व, युगन्धर शिव स्थाणु शूलपाणि अर्द्धनारीश्वर, पशुपतिमहेश्वर आदि उल्लेखनीय हैं। शैव धर्म के विषय में अनुमान किया जाता है कि वैदिकाल से पुराना है और इस में आर्येतर तत्वों का भी समावेश है।[35] शिव की उपासना मानव तथा लिंग दो रूपों में प्रचलित रही है।

भास के नाटकों में शिव का उल्लेख यत्र-तत्र प्राप्त होता है। बालचरित में शिव का शर्व नाम मिलता है।[36] प्रतिज्ञा यौगन्धरायण नामक नाटक में शिव को

युगन्धर कहा गया है।[37] भास के अविमारक नामक नाटक में शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप का उल्लेख मिलता है[38]। बालचरित नाटक में एक अन्य स्थान पर महेश्वर के मुख से निकले हुए क्रोध का उल्लेख प्राप्त होता है[39]। शैव, पाशुपत, कापालिक तथा कालामुख प्रमुख सम्प्रदाय माने जाते हैं। इन में कापालिक का उल्लेख भास ने किया है।[40]

ईसवी सन् की प्रथम एवं द्वितीय शताब्दियों में कुषाण काल के सन्दर्भ में शिव की मूर्तियों के अनेक प्रकार मिलते है: सादा शिव लिंग, एकमुखी तथा पंच मुखी शिव लिंग, शिव पार्वती और अर्द्धनारीश्वर[41]। सादे शिवलिंग में विग्रह बिल्कुल सादा है। एकमुखी शिवलिंग में मूर्ति के सामने की ओर मानवमुख है। पंचमुखी शिवलिंग में चार मुख चार दिशाओं में है और पाँचवा मुख सब से ऊपर है। शिव के पाँच रूपों के नाम सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान हैं। शिव पार्वती रूप में शिव के वामांग में पार्वती खड़ी है[42]। अर्द्धनारीश्वर में दाहिना भाग पुरुष का तथा बायाँ भाग नारी का है। दाहिनी ओर जटाजूट और बाघम्बर तथा बायीं ओर अलकावली, कर्णकुण्डल तथा एक स्तन, मुखला और साड़ी का अंकन है[43]। इस प्रकार साहित्यिक साक्ष्यों की पुष्टि पुरातात्विक साक्ष्यों से होती है।

गुप्त तथा गुप्तोत्तर काल में शैव धर्म की लोक प्रियता इस काल के नाटकों में प्राप्त साक्ष्यों से इंगित होती है। कालिदास के मालविकाग्निमित्रम्[44] तथा विक्रमोर्वशीयम् की प्रस्तावना के मांगलिक श्लोक शिव की स्तुति परक हैं। अभिज्ञान शाकुन्तलम के मंगलाचरण श्लोक में शिव की अष्ट मूर्तियों की स्तुति की गयी है[46]
या सृष्टि: स्रष्टुराद्या, वहति विधिहुतं याहविर्या च होत्री, ये द्वे कालं विधत्त:, श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्यविश्वम् । यामाहु: सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिन: प्राणवन्त:, प्रत्यक्षाभि: प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीश: ।।

प्रत्यक्ष आठ मूर्तियों से युक्त ईश (शिव) से रक्षा करने की प्रार्थना की गयी है। शिव की अष्टमूर्तियों पर सरस्वती द्वारा अष्टपुष्पिका चढ़ाकर पूजा का उल्लेख बाणभट्ट ने हर्ष चरित में किया है।[47] बाणभट्ट ने इनके नामों में पृथ्वी (अवनि), वायु (पवन), जल (वन), आकाश (गगन), अग्नि (दहन), सूर्य (तपन), चन्द्रमा

[तुहिन किरण] और भगवान [आत्मा] का उल्लेख किया है।[48]

मृच्छकटिक की प्रस्तावना में प्रथम दो मांगलिक श्लोक शिव की स्तुति से सम्बन्धित है।[49] मृच्छकटिक के एक श्लोक में कहा गया है कि नीलकण्ठ का श्याम मेघ जैसा कण्ठ जिस में पार्वती की भुजा रूपी लता विद्युत पंक्ति की भाँति शोभित होती है, वह सभी की रक्षा करें।[50] भवभूति के मालतीमाधव नाटक प्रारम्भिक पाँच श्लोकों में शिव, पार्वती, कार्तिकेय तथा गणेश की वंदना की गयी है।[51] सम्राट हर्ष की दो नाटिकाओं रत्नावली[52] तथा प्रियदर्शिका[53] के मांगलिक श्लोक पार्वती तथा शिव की स्तुतिपरक हैं ।

नाटकों में प्राप्त इस प्रकार की शिव की स्तुतियों से स्पष्ट हो जाता है कि शैव धर्म का प्रभाव बढ़ रहा था। शिव की लोकप्रियता शासक एवं सम्भ्रान्त वर्ग में विशेष रूप से थी। शिव के प्रति लोगों के भक्ति-भाव की ही प्रधानता थी। शिव की उपासना उन के विविध रूपों में लोग करते थे।

गुप्त एवं गुप्तोत्तर काल के अभिलेखों, मूर्तियों और मन्दिरों के साक्ष्यों से यह इंगित होता है कि शैव धर्म काफी लोकप्रिय था। गुप्त काल के अभिलेखों में शिव का सर्व प्रथम उल्लेख समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में मिलता है जिस में पशुपति शिव के जटाजूट से गंगा के निकलने का वर्णन मिलता है।[54] चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन के पाँचवें वर्ष के मथुरा अभिलेख में उदिताचार्य द्वारा गुर्वायतन में अपने गुरु कपिल और गुरु के गुरु उपमित की स्मृति में कपिलेश्वर और उपमितेश्वर नाम से शिवलिंग अथवा मूर्ति स्थापित करने का उल्लेख मिलता है।[55] चन्द्रगुप्त द्वितीय के एक अधिकारी वीरसेन शाब ने उदयगिरि [विदिशा, मध्य प्रदेश] में शम्भु के मन्दिर के रूप में एक गुहा का निर्माण कराया था।[56] प्रथम कुमार गुप्त के करमदंडा अभिलेख से ज्ञात होता है कि मंत्री कुमारामात्य शिखर स्वामी के पुत्र कुमारामात्य महाबलाधिकृत पृथ्वीषेण द्वारा पृथ्वीश्वर नामक शिवलिंग स्थापित किये जाने का वर्णन।[57]
गुप्तोत्तर काल के अभिलेखों में ईश्वरवर्मा के हरहा [बाराबंकी जिला] अभिलेख का उदाहरण दिया जा सकता है जो शिव की स्तुति से प्रारम्भ होता है जिसमें

उन्हें विश्व का निर्माता, पालनकर्ता तथा संहारकर्ता कहा गया है।[58] मौखरिवंश के अनंतवर्मा द्वारा शिव एवं पार्वती की मूर्तियों के स्थापित करने की पुष्टि नागार्जुनी गुफा अभिलेख से होती है।[59] गुप्तोत्तर काल के राजवंशों के कतिपय शासकों ने अपने धार्मिक विश्वास के अनुसार उपाधियाँ धारण किया था। मौखरि वंश के सर्ववर्मा को नालन्दा तथा असीरगढ़ मुद्रा अभिलेखों के अनुसार "परममाहेश्वर" कहा गया है।[60] अवन्तिवर्मा को सोहनाग मुद्रा अभिलेख में "परममाहेश्वर" कहा गया है।[60] अवन्तिवर्मा को सोहनाग मुद्रा अभिलेख में "परममाहेश्वर" की उपाधि से विभूषित किया गया था।[61] इस प्रकार मौखरिवंश के कतिपय शासकों द्वारा "परममाहेश्वर" की उपाधि धारण करने से ज्ञात होता है कि छठवीं शताब्दी ईसवी में शैव धर्म विशेष लोकप्रिय था। इसकी पुष्टि मौखरियों की राजमुद्राओं पर शिव के वाहन नंदी का गणों के साथ अंकन मिलता है।[62] हर्ष को मधुबन तथा बांसखेड़ा अभिलेखों में परम महेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज की उपाधि प्रदान की गयी है।[63] इस प्रकार साहित्यिक सूत्रों से ज्ञात तथ्यों की पुष्टि समकालिक अभिलेख के साक्ष्यों से भी होती है।

बौद्ध धर्म

प्रथम शताब्दी ईसवी से लेकर सातवीं शताब्दी ईसवी के बीच के काल में बौद्ध धर्म एक महत्वपूर्ण धर्म था। अधिकांश शासकों की धार्मिक सहिष्णुता की नीति के फलस्वरूप बौद्धधर्म को विकसित होने का सुअवसर प्राप्त हुआ। प्रथम शताब्दी ईसवी में कनिष्क प्रथम[64] तथा सातवीं शताब्दी में सम्राट हर्ष[65] ने बौद्ध धर्म को विशेष संरक्षण प्रदान किया।

नाटकों में बौद्ध धर्म के विषय में बहुत कम उल्लेख प्राप्त होते हैं। भास के नाटकों में बौद्ध भिक्षुओं को श्रमणक[66], क्षमणक आदि शब्दों से सम्बोधित किया गया है। बौद्ध धर्म के विषय में अश्वघोष के शारिपुत्र प्रकरण से प्रकाश पड़ता है। इस प्रकरण में शारिपुत्र तथा मौदगलायन नामक दो ब्राह्मण युवकों के बुद्ध के उपदेश से प्रभावित

हो कर बौद्ध धर्म में दीक्षित होने का वर्णन है। इसमें भरतवाक्य नायक द्वारा प्रार्थना के रूप में नहीं है अपितु बुद्ध के द्वारा नवदीक्षित शिष्यों को आशीर्वाद के रूप में है। शारिपुत्र प्रकरण का भरतवाक्य बुद्ध के शब्दों में इस प्रकार है:-

"अब से ये दोनों इन्द्रिय-निग्रह करते हुए निरंतर ज्ञान-वृद्धि करते रहें और निर्वाण प्राप्त करें[67]।"

सातवीं शताब्दी ईसवी में सम्राट श्री हर्ष विरचित नागानन्द नाटक की कथावस्तु बौद्धमत से सम्बन्धित है। इस में जीमूतवाहन नामक विद्याधर राजकुमार परहितसम्पादन में अपनी देह शंखचूड नामक नाग के बदले में गरुड़ को अर्पित करता है। नायक जीमूतवाहन गौरी के प्रसाद से पुनः जीवित हो जाता है। गरुड़ ने नागों को खाना छोड़ दिया जिससे जीमूतवाहन को अत्यन्त आनन्द हुआ, यही इस ग्रन्थ के नामकरण का हेतु है। इस नाटक की कथावस्तु में बौद्ध तथा वैदिक इन दोनों धर्मों का प्रशस्त समन्वय दिखलाया गया है जो सातवीं शताब्दी की धार्मिक अवस्था के अनुकूल था। नागानन्द नाटक के मंगलाचरण में प्रथम दो श्लोकों में बुद्ध की वंदना की गई है।[68] बौद्ध धर्म से सम्बन्धित कतिपय अन्य पौराणिक आख्यानों के पात्रों के उल्लेख मिलते हैं, बुद्ध की तपस्या को भंग करने के लिए मार के आक्रमण (मार धर्षण), मार के सैनिकों तथा अप्सराओं (दिव्यनारी जनैः) का उल्लेख किया गया है[69]। बोधिसत्व के मनोहर चरित्र का (लोकहारि च बोधिसत्व चरितम्) विवरण मिलता है।[70] बौद्ध धर्म के अनुसार बोधिसत्व उन ज्ञाननिष्ठ, करुणाशील महात्माओं को कहा जाता है जो अगले जन्म में बुद्धत्व को प्राप्त करने वाले होते हैं।

अन्य नाटकों में ~~बौद्ध भिक्षुणियों को~~ नायिका की धात्री, सखी तथा दूती का कार्य सामान्यतः बौद्ध भिक्षुणियों को सौंपा गया है। मालविकाग्निमित्रम् में कौशिकी नाम की परिव्राजिका का उल्लेख है।[71] भवभूति के मालतीमाधव में कामन्दकी नामक बौद्ध भिक्षुणी का उल्लेख मिलता है जो अभिभावकों की प्रार्थना पर मालती के उद्धार का बीड़ा उठाती है, क्योंकि उसका (मालती) का विवाह एक ऐसे व्यक्ति के साथ होने जा रहा है जो उसके अयोग्य है और जिसका वरण उसके पिता ने नहीं

किया है।[72] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जैन तथा वैष्णव मतावलम्बी नाटककारों ने दूतियों के रूप में बौद्ध भिक्षुणियों को चुना है।

मृच्छकटिक में संवाहक नामक एक बौद्ध भिक्षु का उल्लेख प्राप्त होता है।[73] दरिद्रता के कारण वह संवाहक का व्यवसाय करने वाला एक गृहपति का पुत्र है। चारुदत्त के यहाँ नौकरी करने के पश्चात् द्यूतक्रीड़ा से अपनी आजीविका चलाने लगता है। द्यूत में हार कर वसन्त सेना द्वारा ऋण मुक्त कराया जाता है और विरक्त होकर बौद्ध भिक्षु के रूप में हमारे सामने आता है। वह एक सच्चा भिक्षु दिखलाई देता है। वह इन्द्रिय-संयमी है।[74] वह उपकार का बदला चुकाने के लिए चिन्तित रहता है। अन्त में वसन्त सेना की प्राणरक्षा करके वह संतुष्ट हो जाता है।[76] इन उपर्युक्त तथ्यों से प्रसंगतः बौद्ध धर्म के अनुयायियों के प्रति भारतीय विचारधारा पर प्रकाश पड़ता है। अनेक स्त्री पुरुष पात्रों में से कतिपय को बौद्ध धर्मावलम्बी इंगित किया गया है। स्त्री पात्रों में नायिका, दूती की भूमिका में बौद्ध भिक्षुणियों की भूमिका को विशेष महत्व प्रदान किया गया है।

जैन धर्म

जैन धर्म भी प्राचीन भारत की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण श्रमण विचारधारा से सम्बन्धित धर्म माना जाता है। इसके विषय में नाटकों में अपेक्षाकृत अत्यल्प साक्ष्य प्राप्त होते हैं। विशाखदत्त के मुद्राराक्षस नाटक के उल्लेख का इस सन्दर्भ में उदाहरण दिया जा सकता है। इस में जैन भिक्षु को क्षपणक तथा अर्हत कहा गया है।[77] जैन उपासक श्रावक कहलाते थे (श्रावकं धर्मसिद्धिर्भवतु)।[78] जैन भिक्षु ज्योतिषशास्त्र के जानकार होते थे।[79] यह संक्षिप्त उल्लेख जैन धर्म की वास्तविक स्थिति को इंगित नहीं करता है।

पाँचवीं शताब्दी में जैन धर्म की वलभी गुजरात में संगीति हुई थी।[80] चौथी पाँचवीं शताब्दी में जैन विकसित अवस्था में था।[81]

कार्तिकेयोपासना

अन्य धर्मों में कार्तिकेय की उपासना के विषय में भास के प्रतिज्ञा यौगन्धरायण चरित[83] तथा अविमारक[84] में उल्लेख मिलता है। कार्तिकेय की शक्ति कात्यायनी

का उल्लेख बालचरित में अनुचरों के सहित मिलता है जिसमें कुण्डोदर, शूल, नील तथा मनोजव के नाम मिलते हैं।[85] इससे कार्तिकेय की पूजा की लोकप्रियता प्रकट होती है।

यम

मृत्यु के देवता के रूप में यम का उल्लेख प्राप्त होता है। भास के बालचरित नामक नाटक में कृतान्त[86] यम तथा यमलोक का साक्ष्य मिलता है।[87]

प्राप्तोऽस्मि तिष्ठ मम वेगमिमं सहस्व,
त्वामद्य मुष्टिक प्रमाय निषेधयामि ।
भग्नास्थिरेव निहतो, निहतो यथापि,
कंसासुरं च यमलोकमहं नयामि ।।

विशाखदत्त के मुद्राराक्षस नाटक में यमपट्ट का उल्लेख मिलता है।[88] गुप्तचर यमपट दिखलाने के बहाने नगरवासियों के विषय में सूचनाएँ एकत्रित करते थे और लोगों को किसी प्रकार की आशंका नहीं होती थी। [अस्ति तावदहमार्येण पौरजनचरितान्वेषणे नियुक्तः परगृहप्रवेशे परस्यानाशंकनीयेन अनेन यमपटेन हिण्डमानो मणिकार श्रेष्ठिनश्चन्दनदासस्य गृहं प्रविष्टोऽस्मि तत्र यमपटं प्रसार्य प्रवृत्तोऽस्मि गीतानि गातुम।][89] मुद्राराक्षस में एक अन्य महत्त्वपूर्ण साक्ष्य इस सन्दर्भ में प्राप्त होता है। यमराज के सचिव चित्रगुप्त का उल्लेख प्राप्त होता है।[90] चित्रगुप्त मृत्युलोक में जीवन एवं मरण आदि का हिसाब-किताब अपने पास रखता था।

सूर्य

सूर्य की उपासना भारत में वैदिक काल से ही प्रचलित थी। नाटकों में सूर्य पूजा के उल्लेख अधिक नहीं प्राप्त होते हैं। विक्रमोर्वशीयम् में सूर्य पूजा का उल्लेख मिलता है।[91] गुप्त काल के सन्दर्भ में सूर्य पूजा के कतिपय साक्ष्य मिलते हैं। प्रथम कुमारगुप्त के शासनकाल में 436 ईसवी में लाट [गुजरात] से मालवा में आये तन्तुवाय श्रेणी के सदस्यों द्वारा सूर्य के मंदिर के मंदसौर में निर्माण कराये जाने का विवरण

मिलता है।[92] इसी तन्तुवाय श्रेणी ने ही उसका 573 ईसवी में जीर्णोद्धार कराया था।[93] सूर्य का दूसरा गुप्तकालीन उल्लेख स्कन्दगुप्त के समय का है।[94] उच्चकल्प के महाराज सर्वनाग द्वारा आश्रमक नामक में स्थित सूर्य मन्दिर को दान दिये जाने का उल्लेख है।[95] हूण नरेश मिहिरकुल के शासन के पन्द्रहवें वर्ष में सूर्य मन्दिर के निर्माण किये जाने की बात ज्ञात होती है।[96]

लक्ष्मी

लक्ष्मी की उपासना के सन्दर्भ में भी नाटकों में अत्यल्प उल्लेख प्राप्त होते हैं। भास के अविमारक नाटक में लक्ष्मी पूजा का एक साक्ष्य मिलता है।[97] कुषाण काल में लक्ष्मी, गज-लक्ष्मी आदि रूपों में अंकन प्राप्त होता है।[98] गुप्त काल में लक्ष्मी का सिक्कों पर विशिष्ट रूप से अंकन हुआ है। अधिकांशतः लक्ष्मी को खड़ी मुद्रा में दिखलाया गया है।[99] गुप्त काल की लक्ष्मी की स्वतंत्र प्रस्तर मूर्ति न मिलने का आशय यह नहीं है कि इस काल में लक्ष्मी उपेक्षिता थी। इस काल में उसका अंकन एक नवीन धरातल पर हुआ। उसकी कल्पना विष्णु की शक्ति के रूप में तथा सप्तमातृकाओं के रूप में होने लगा।

लोक धर्म

यक्ष, यक्षिणी, विद्याधर, सिद्ध, गंधर्व, किन्नर, नाग आदि की उपासना के भी नाटकों में यत्र-तत्र संकेत मिलते हैं। भास के नाटक प्रतिज्ञा यौगन्धरायण में उल्लेख मिलता है कि कालाष्टमी को वासवदत्ता ने अपनी धात्री के साथ यक्षिणी के मन्दिर में पूजा कार्य करने गई थी।[100] यक्ष पूजा के उल्लेख भास के अन्य नाटकों में भी मिलते हैं। अविमारक[101] तथा बालचरित [102] के साक्ष्य इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं।

यह उल्लेखनीय है कि यक्ष-यक्षिणी पूजा ईसवी सन् की प्रारम्भिक शताब्दियों में विशेष लोकप्रिय थी। पटना, मथुरा, बेसनगर (विदिशा) से अनेक यक्ष-यक्षिणी प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं।[103] बौद्ध साहित्य में भी यक्ष-यक्षिणी पूजा के साक्ष्य

मिलते हैं। तृतीय शताब्दी ईसवी के एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ महामायूरी में यक्षों की एक लम्बी सूची और उनके पूजास्थलों का वर्णन किया गया है।[104] जैन धर्म में भी यक्ष-यक्षिणियों की एक लम्बी परम्परा मिलती है।[105] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि यक्ष-यक्षिणी पूजा की परम्परा हिन्दू, बौद्ध तथा जैन इन सभी प्रमुख धर्मों में थी।

भूत-पिशाच सम्बन्धी धाराओं का वर्णन समाज में प्रचलित था। भास के बालचरित नाटक में राक्षस तथा पिशाच से रात्रि में अनिष्ट की आशंका से चिंतित नन्द (गोप) उल्लेख मिलता है।[106] राक्षस तथा पिशाच के भय से लोग भयभीत हो जाते थे।

लोक में तरह-तरह के रीति-रिवाज तथा अन्ध विश्वास प्रचलित थे। शकुन-अपशकुन की मान्यता समाज में प्रचलित थी। किसी भी कार्य के करने के लिए अनेक टोने -टोटके किये जाते थे[107] आँधी, भूकम्प, उल्कापात तथा मूर्तियों का गिरना अपशकुन माना जाता था।[108] इन का क्या प्रभाव होगा, इनके विषय में ज्योतिषी (सांवत्सरिक) तथा पुरोहित गणना करके फलागम बतलाते थे।[109]

पुरुष की बाईं आँख का फड़कना, कौआ का काँव-काँव करना, मार्ग में सर्प का मिलना ये सभी भयंकर अपशकुन माने जाते थे। मृच्छकटिक में इस प्रकार के अपशकुन देख कर चारु दत्त मृत्यु की आशंका करता है।[110]

सव्यं मे स्पन्दते चक्षुर्विरौति वायसस्तथा।
पन्थाः सर्पेण रुद्धोऽयं स्वस्ति चास्यात्तु दैवतः ।।

यात्रा के लिए प्रस्थान करने से पूर्व लोग तिथि लग्न, नक्षत्र, ग्रहों आदि का विचार करते थे। जब सूर्य अस्ताभिमुख हो जाये तथा पूर्णिमा का चन्द्रमा उदित हो जाये और केतु के उदय एवं अस्त होने पर बुध के लग्न में प्रस्थान करना उत्तम माना जाता था।[111]:-

अस्ताभिमुखे , उदिते संपूर्णमण्डले चन्द्रे ।
गमन बुधस्य लग्ने उदितास्तमितेकेतौ।।

इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि समाज में शकुन-अपशकुन की मान्यता उत्तरोत्तर बढ़ रही थी । समाज में ज्योतिष के प्रति श्रद्धा एवं विश्वास बढ रहा था। लोगों में अंधविश्वास बढ़ता जा रहा था। नाटकों में कतिपय लोक-धर्मों के आयोजन का भी साक्ष्य मिलता है। बालचरित में इन्द्र यज्ञ नाम के महोत्सव का उल्लेख मिलता है।[112] यह कोई लोक उत्सव प्रतीत होता है जिसका आयोजन गोपगण करते थे। इसी प्रकार धनुर्मह नामक एक अन्य उत्सव का उल्लेख मिलता है जिसका आयोजना मथुरा में किया गया था।[113] कौमुदी महोत्सव नामक लोकोत्सव का उल्लेख मुद्राराक्षस में मिलता है।[114] रत्नावली नाटिका में वसन्तोत्सव के आयोजन का उल्लेख है।[115]

ईसवी सन् की चौथी पाँचवी से सातवीं शताब्दी के बीच में धर्म के क्षेत्र में एक नवीन युग का सूत्रपात हुआ। इन्द्र, वरुण, सोम, अग्नि, ऊषा तथा अदिति आदि वैदिक देव-देवियाँ पुराने हो चुके थे। विष्णु और शिव ने उनका स्थान ले लिया था । इनका अत्यधिक महत्व बढ़ गया था और वे सर्वत्र पूजे जाने लगे थे तथा इनके मन्दिरों और मूर्तियों का निर्माण होने लगा था तथापि वैदिक धर्म के कतिपय अनुष्ठानों और यज्ञों का आयोजन सम्राट करते थे। मालविकाग्नि मित्रम् नाटक में कालिदास ने पुष्यमित्र द्वारा अश्वमेध यज्ञ के अनुष्ठान का उल्लेख मिलता है।[116] गुप्त सम्राट समुद्र गुप्त ने अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया था जिसके अभिलेखीय तथा मुद्रा सम्बन्धी साक्ष्य मिलते हैं।[117] भवभूति ने उत्तर रामचरित में राम द्वारा अश्वमेध यज्ञ के सम्पादन का उल्लेख मिलता है।[118]

संक्षेप में नाटकों के अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वैदिक धर्म विभिन्न शाखाओं और प्रशाखाओं में विकसित हो गया था। उसमें प्राचीन तथा नवीन, उच्च एवं सामान्य धार्मिक विचारों का समन्वय मिलता है। धर्म के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण तथ्य उल्लेखनीय हैं। वैदिक यज्ञ का स्थान प्रायः उपासना

ने ले लिया था। मूर्ति पूजा उपासना का केन्द्र बन गई । मूर्ति की पत्र, पुष्प, फल तथा तोय (जल) से पूजा की जाती थी। प्राचीन वैदिक तथा नवीन धार्मिक तत्वों का हिन्दू धर्म में समन्वय हुआ । मन्दिरों तथा मूर्तियों का निर्माण होता था।

सन्दर्भ

1· पाण्डे, गोविन्द चन्द्र, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, लखनऊ, 1963 पृ0 10

2· भण्डारकर, आर0जी0 वैष्णव, शैव एवं अन्य धर्म (अनुवादक उमाशंकर व्यास) वाराणसी, 1973 भूमिका पृष्ठ 10

3· मजूमदार, आर0सी0 (सं0 दि एज ऑफ इंपीरियल यूनिटी बम्बई 1968 पृ0265

4· भण्डारकार आर0जी0 पूर्वोद्धरित पृष्ठ 17-25

5· भण्डारकर, आर0जी0 पूर्वोद्धरित पृष्ठ 56-60

6· अविमारक, अंक 1·1-2

7· बालचरित, अंक 1·1

8· प्रतिमा नाटक, अंक 1·1

9· अभिषेक अंक 1६1

10· अविमारक अंक 1·1

11· बालचरित अंक, 1

12· सरकार डी0सी0 सेलेक्ट इंस्क्रिप्शन्स (द्वितीय संस्करण) कलकत्ता 1965 पृ0 168 "गोवर्धने, सुवर्णमुखे, शोर्यारिगे च रामतीर्थे।"

13· महाभारत 3;85;42

14· बालचरित अंक 1·22-27

15· बालचरित अंक 1·-1

16· वही अंक 1·21

17· वही अंक 1·25

18· वही, 1·22

19· वही, 1·24

20· वही, 1·23

21· वही, 1·26

22• बालचरित, अंक 3

23• वही, अंक 4•11

गोवर्धनोद्धरणम प्रतिम प्रभावं,

बाहुं सुरेश तव मन्दरतुल्य सारम् ।

काशक्तिरस्ति मम दग्धमिमं सुवीर्यं

यं संश्रितास्त्रिभुवनेश्वर सर्वलोका: ।

24• वही 5•13

25• प्रतिमा नाटक, 5•14

26• अभिषेक नाटक अंक 5

27• बालचरित, अंक 3

28• अभिषेक, अंक 6

29• अग्रवाल, वासुदेवशरण, भारतीय कला [द्वितीय संस्करण] वाराणसी 1987 पृ0262

30• अग्रवाल, वासुदेवशरण पार्श्वोद्धरित पृष्ठ 266

31• मुद्राराक्षस अंक 7•19

वाराहीमात्मयोने स्तनुम तनतिबावास्थित:

32• फ्लीट, जे0एफ0 कार्पस इंस्क्रिप्शनम इंडिकेरम जिल्द लंदन 1888 पृष्ठ 72

33• फ्लीट, जे0एफ0 पार्श्वोद्धरित, पृष्ठ 159

34• सरकार, डी0सी0 पूर्वोद्धरित पृष्ठ 337

लोकानुग्र स्वामि श्वेतवराहस्वामिनोर्नाम-

...... देवकुल द्वयम् ....।

35• भण्डारकर, आर0जी0 पूर्वोद्धरित पृष्ठ

36• बालचरित अंक 4•7

37• प्रतिज्ञा यौगन्धरायण अंक 1•1

38• अविमारक अंक ?•12

पूर्वा तु काष्ठा तिमिरानुलिप्ता,

सन्ध्यारुणा भाति च पश्चिमाशा।

द्विधा विभक्तान्तर मन्त रिक्षं

यात्यर्धनारीश्वर रूप शोभाम् ।।

39. बालचरित अंक 2.4

    क्रोधो महेश्वरमुखादिव मां प्रपन्नः ।

40. बालचरित अंक 2.5

    श्मशान मध्यादहमागतेऽस्मि,

    चण्डालवेषेण तिरस्कृतण्डम् ।

    व्यालम्बमानाति विनिर्गतैः .. ।

41. अग्रवाल, वासुदेवशरण, पूर्वोद्धरित पृष्ठ 26.-69
42. फोगेल, जे0पी0 केटालॉग ऑव दि आर्कियालाजिकल म्युजियम एट मथुरा, इलाहाबाद 1910 पृष्ठ 97
43. फोगेल, पार्श्वोद्धरित पृष्ठ 97
44. मालविकाग्निमित्रम्, अंक 1.1
45. विक्रमोर्वशीयम् अंक 1.1
46. अभिज्ञान शाकुन्तलम् अंक 1.1
47. अग्रवाल, वासुदेवशरण, हर्षचरित: एक संस्कृत अध्ययन, पटना, 1964 पृष्ठ 19
48. अग्रवाल ,वासुदेवशरण, पार्श्वोद्धरित पृष्ठ 19
49. मृच्छकटिक, अंक 1.1-2
50. मृच्छकटिक, अंक 1.2

    पातु वो नीलकण्ठस्य कण्ठः श्यामाम्बुदोपमः ।

    गौरीभुजलता यत्र विद्युल्लेखेव राजते ।।

51. मालती माधव, अंक 1.1-5
52. रत्नावली, अंक 1.1-3
53. प्रियदर्शिका, अंक 1.1-2
54. सरकार, डी0सी0 पूर्वोद्धरित पृष्ठ 267
55. एपीग्राफिया इंडिका 21 पृष्ठ 1-9
56. सरकार, डी0सी0 पूर्वोद्धरित पृष्ठ 280
57. सरकार डी0सी0 पूर्वोद्धरित पृष्ठ 290

58• थपल्याल, के0के0, इंस्क्रिप्शन्स ऑव दि मौखरीज लेटर गुप्ताज•
पुष्पभूतिज एण्ड यशोवर्मन ऑव कन्नौज, दिल्ली 1985
पृष्ठ 141

59• थपल्याल, के0के0 पार्श्वोद्धरित "नागार्जुनीगुहा लेख संख्या 1, पृष्ठ 135

60• वही, पृष्ठ 150, 152

61• वही, पृष्ठ 124

62• वही, पृष्ठ 177, 182

63• थपल्याल, के0के0 पूर्वोद्धरित पृष्ठ 177, 182

64• पुरी बी0 एन0, इंडिया अण्डर दि कुषाणाज, बम्बई 1965 पृष्ठ

65• त्रिपाठी, आर0एस0 हिस्ट्री ऑव कन्नौज, वाराणसी 19 पृष्ठ

66• प्रतिज्ञा यौगन्धरायण, अंक 3

67• शारिपुत्र प्रकरण, अंक 9

68• नागानन्द नाटक, अंक 1•1-2•

69• नागानन्द नाटक, अंक 1•2

70• नागानन्द, अंक 1•3

71• मालविकाग्निमित्रम अंक 4, कौशिकी नाम की परिव्राजिका का उल्लेख है।

72• मालती माधव, अंक 6

73• मृच्छकटिक अंक 18

74• वही, अंक 8
शिरो मुण्डितं, तुण्डं मुण्डितं, चित्तं न मुण्डितं किमर्थ मुण्डितम्
यस्य पुनश्च चित्तं मुण्डितं साधु सुष्ठु शिरस्तस्यमुण्डितम् ।।

75• वही, अंक 8

76• वही, अंक 8•47

77• हस्त संयतो, मुख संयत:, इन्द्रियसंयत: स खलु मनुष्य: ।
किं करोति राजकुलं तस्य परलोकों हस्त निश्चल: ।।

78• मुद्राराक्षस, अंक 5

79· मुद्राराक्षस, अंक 5

80· जैनी जे0आई0, आउटलाइन्स ऑफ जैनिज्म पृष्ठ 100

81· कापडिया, एच0आर0 जैन रेलिजन एण्ड लिटरेचर पृष्ठ 125-30

82· प्रतिज्ञा यौगन्धरायण, अंक 1

83· बालचरित, अंक 2·20-24

84· अविमारक, अंक 3

85· बालचरित अंक 2·24

86· वही, अंक 1

87· वही, अंक 5·10

88· मुद्राराक्षस, अंक 1

89· वही अंक 1

90· वही, अंक 1·20

91· विक्रमोर्वशीयम, अंक 3

92· फ्लीट, जे0एफ,, पूर्वोद्धरित, पृष्ठ 83 पंक्ति 17-19

93· फ्लीट, जे0एफ0, पूर्वोद्धरित, पृष्ठ 83 पंक्ति 20-21

94· फ्लीट, जे0एफ0, पूर्वोद्धरित, पृष्ठ 70 पंक्ति 7

95· फ्लीट, जे0एफ, पूर्वोद्धरित , पृष्ठ 120-29

96· फ्लीट, जे0एफ0,पूर्वोद्धरित, पृष्ठ 163

97· अविमारक, अंक 3

98· अग्रवाल, वासुदेवशरण पूर्वोद्धरित पृष्ठ 260

99· अल्तेकर,ए0एस0, केटलॉग ऑव दि गुप्ता गोल्ड क्वायन्स इन दि बयाना होर्ड ,बम्बई, 1954, पृष्ठ 50

100· प्रतिज्ञा यौगन्धरायण, अंक 3

या सा कालाष्टमी । अतिक्रान्ता, तस्यां तत्रभवती

वासवदत्ता नाम राजदारिका धात्रीद्वितीया···

भगवत्या यक्षिण्या स्थानं देवकार्यं कर्तुं गतासीत् ।

101. अविमारक, अंक 3

102. बालचरित, अंक 2

103. सिंह,अमरेन्द्र कुमार, <u>प्राचीन भारतीय धर्म ~~संस्क~~ एवं कला में यक्ष, किन्नर और दिक्पाल</u>, इलाहाबाद, 1990, पृष्ठ 44

104. सिंह, अमरेन्द्र कुमार, पाश्वोद्धरित, पृष्ठ 50

105. सिंह अमरेन्द्र कुमार, पूर्वोद्धरित, पृष्ठ 56

106. बालचरित ,अंक 1

किं नु राक्षसी वा उत पिशाची वा । ईदृश्यां
प्रतिभयरजन्यां मृता दारिका मम हस्ते ।

107. अविमारक, अंक 3

108. बालचरित अंक 2

109. बालचरित, अंक 2.10

110. मृच्छकटिक , अंक 9.11-15

111. मुद्राराक्षस, अंक 4.19

112. बालचरित, अंक 1

अस्माकं घोषस्योचितं इन्द्रयज्ञो नामोत्सवो भविष्यति ।

113. बालचरित अंक 4

मथुरायां धनुर्महो नाम महोत्सवो भविष्यति ,
तमनुभवितं अपरिणताभ्यां भवद्भ्यामागन्तव्यमिति ।

114. मुद्राराक्षस, अंक 3

115. रत्नावली, अंक 1

116. मालविकाग्निमित्रम्,अंक 5.15

117. राय,यू0एन0 गुप्त राजवंश तथा उसका युग, इलाहाबाद 1977 पृष्ठ 160-61

118. उत्तर रामचरित, अंक 2, एवं 4

पंचम अध्याय

राज्य तथा राज-शासन

राज्य और शासन व्यवस्था

संस्कृत नाटकों के अध्ययन से राज्य और शासन व्यवस्था के विषय में किंचित प्रकाश पड़ता है। अधिकांश संस्कृत नाटकों के विषय किसी राजा के प्रेम - प्रसंग से सम्बन्धित हैं और रूपक के प्राय: अधिकांश पात्र राजा, रानी के अतिरिक्त उनके परिचारकगण हैं, इसलिए उनकी भूमिकाएँ राजमहल की घटनाओं के अनुरूप हैं। नाटककारों को कथानक चुनने की स्वतंत्रता रही है, रूपक की कथावस्तु प्रख्यात उत्पाद्य (कवि-कल्पित) अथवा मिश्रित मिलती है।[1] प्राचीन इतिहास पर अवलम्बित कथावस्तु रामायण, महाभारत अथवा पुराणों पर आधारित होती है। कवि द्वारा कल्पित कथा उत्पाद्य कहलाती है। जब कथा का कुछ अंश इतिहास पर अवलम्बित होता है और अधिक अंश कवि-कल्पित होता है तो उसको मिश्रित कहते हैं। प्रत्येक पात्र का अपना विशिष्ट व्यक्तित्व होता है। पात्र समाज के विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि होते हैं, अत: उन के माध्यम से राज्य और शासन व्यवस्था के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है तथापि शासन व्यवस्था के विषय में जो जानकारी नाटकों के माध्यम से प्राप्त होती है वह एकांगी और अधूरी कही जा सकती है। इस की सम्यक् जानकारी के लिए समकालीन अन्य साहित्यिक तथा अभिलेखीय साक्ष्यों की सहायता लेने की आवश्यकता पड़ती है। फिर भी इसमें कोई संदेह नहीं है कि शासन व्यवस्था के विषय में नाटकों से जो जानकारी प्राप्त होती है, वह अनेक दृष्टियों से उल्लेखनीय है। शासकों का प्राय:आदर्श राजाओं के रूप में चित्रण किया गया है। मृच्छकटिक नामक कवि-कल्पित प्रकरण में शासन का यथार्थवादी स्वरूप सामने आता है। जिसमें शासन की त्रुटियों को उजागर किया गया है। इसमें बिगड़ी हुई राजनीतिक अवस्था का परिचय प्राप्त होता है।[2]

प्राचीन भारत के राजनीतिक इतिहास की दृष्टि से प्रथम शताब्दी ईसवी से लेकर सातवीं शताब्दी ईसवी के बीच का समय अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जा सकता है। शक-कुषाण काल से लेकर, पुष्यभूति वंश के शासक हर्ष के समय तक विभिन्न

राजवंश इस काल में हुए । हिन्द-यवन (इन्डो-ग्रीक) राजवंश के प्रथम शताब्दी ई0पू0 में पतन के पश्चात प्राचीन भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग में शकों और इसके पश्चात् कुषाणों के शासन की स्थापना हुई जिनकी शासन-व्यवस्था के विषय में संस्कृत एवं बौद्ध साहित्य के साथ ही साथ अभिलेखों से जानकारी उपलब्ध होती है।[3] चतुर्थ शताब्दी ईसवी ने उत्तरी एवं पूर्वी भारत में गुप्तों[4] और दकन (दक्षिणापथ) में वाकाटकों[5] की सत्ता की स्थापना होते हुए देखी थी। छठवीं शताब्दी ईसवी तक गुप्तों की सत्ता स्थापित रही। गुप्त-वाकाटक काल की शासन व्यवस्था के विषय में उनके अभिलेखों तथा साहित्यिक साक्ष्यों से जानकारी प्राप्त होती है।[6]

गुप्तोत्तर काल में छठवीं-सातवीं शताब्दी ईसवी के बीच भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक राजवंशों का आविर्भाव हुआ। छठवीं शताब्दी ईसवी में मगध के स्थान पर कन्नौज उत्तर भारत के राजनीतिक गुरूत्वाकर्षण का केन्द्र बन गया था[7]। छठवीं-सातवीं शताब्दी के उत्तर भारत के प्रमुख राजवंशों में थानेश्वर के पुष्यभूति (वर्द्धन-वंश), कन्नौज के मौखरि तथा मगध का परवर्ती गुप्तवंश उल्लेखनीय है[8]। इन राजवंशों के समय शासन व्यवस्था की गुप्त राजवंश के के समय की प्रणाली किंचित परिवर्तन के साथ अपनायी गई थी।

भारत की प्राकृतिक सीमाओं का उल्लेख भारत के कतिपय नाटकों के भरत वाक्य में मिलता है। उत्तर में हिमाच्छादित हिमालय है तथा पूर्व एवं पश्चिम में समुद्र है। यह भारतवाक्य दूतवाक्यम्, स्वप्नवासवदत्तम् और बालचरितम् में मिलता है। इस प्रकार भारतीय नाटककारों की कृतियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि भारतीयों की बौद्धिक भावनाओं में भी भौगोलिक एकता विद्यमान थी। बालचरितम् एवं अन्य दो नाटकों में भरतवाक्य इस प्रकार मिलता है।[9]

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलम् ।
महीमेकातपत्रांकां राजसिंह: प्रशास्तुन: ।।

इस पृथ्वी (भारतवर्ष) पर हमारे राजा एकछत्र शासन करें जिसका प्रसार

सागर तक तथा हिमालय और विन्ध्य पर्वत जिसके दोनों कुण्डल हैं। विष्णुपुराण[10] में भी भारतवर्ष की भौगोलिक सीमाओं का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि जो समुद्र के उत्तर में स्थित है और हिमालय के दक्षिण में फैला हुआ है, उस देश को भारत कहते हैं और यहाँ पर रहने वाले लोग भारतीय हैं।

भास के अभिषेक नाटकम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् एवं अविमारकम् नामक इन तीनों नाटकों के भरत वाक्य एक ही प्रकार के हैं। इनमें सम्पूर्ण पृथ्वी (भारतवर्ष) की परिकल्पना की गयी है:-

> भवन्त्वरजसो गाव: परचक्रं प्रशाम्यतु ।
> इमामपि महीं कृत्स्नां राजसिंह: प्रशास्तु न:[11] ।।

पृथ्वी आपद् रहित हो, शत्रु के रथ के चक्र शान्ति का अनुभव करें और इस सम्पूर्ण पृथ्वी पर हमारे राजसिंह राज्य करें।

गुप्तोत्तरकाल में राजनीतिक दृष्टि से देश अनेक छोटे-छोटे परस्पर संघर्षरत राज्यों में बँट गया था। इस स्थिति का संकेत मृच्छकटिक[12] और मुद्राराक्षस[13] के भरतवाक्यों में परिलक्षित होता है। मुद्राराक्षस में भरतवाक्य में प्रलय की चर्चा है तथा म्लेच्छों से पीड़ित पृथ्वी का उद्धार कर के एकछत्र शासन की कामना की गई है:

> वाराहीमात्मयोनेस्तनुमवनविधावास्थितस्यानुरूपाम्,
> यस्य प्राग्दन्तकोटिं प्रलयपरिगता शिश्रिये भूतधात्री ।
> म्लेच्छैरुद्विज्यमाना भुजयुगमधुना संश्रिता राजमूर्ते:,
> स श्रीमद्बन्धुभृत्यश्चिरमवतु महीं पार्थिवश्चन्द्रगुप्त: ।।

जिस पृथ्वी ने सर्व प्रथम प्रलय से घिर कर, रक्षा करने योग्य (अतएव) अनुकूल वराह शरीर में विद्यमान प्रजापति के दन्ताग्र-भाग का आश्रय ग्रहण किया, (उसी ने) इस समय म्लेच्छों से कष्ट प्राप्त करती हुई प्रजापति के भुजयुगल की भाँति माननीय राजा का आश्रय लिया। राजलक्ष्मी, बन्धु-बान्धव तथा अनुचरों से अनुगत वही राजा चन्द्रगुप्त (1) चिर काल तक पृथ्वी की रक्षा करें।

जनपद

जनपद प्राचीन भारतीय भूगोल का अत्यन्त महत्वपूर्ण शब्द है। भौगोलिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और भाषा की दृष्टि से प्रत्येक जनपद स्वाभाविक इकाई था। छठवीं शताब्दी ई०पू० में उत्तर भारत का अधिकांश भाग सोलह महाजनपदों में विभाजित था जिनके नाम प्राय: बौद्ध साहित्य में मिलते हैं[14] काशी, कोशल, अंग, मगध, वज्जि, मल्ल, चेदि, वत्स, कुरु, पंचाल, मत्स्य, शूरसेन, अस्सक (अश्मक), अवन्ति, गंधार और कम्बोज। नाटकों में कतिपय जनपदों के नाम मिलते हैं। देश में यह राजनीतिक स्थिति किस समय थी? यह कहना कठिन है। भास के नाटक प्रतिज्ञायौगन्धरायण में मगध, काशी, वंग, सौराष्ट्र, मिथिला तथा शूरसेन का उल्लेख मिलता है।[15]

अस्मद् सम्बन्धो मागध: काशिराजो,
वांग: सौराष्ट्रो, मैथिल; शूरसेन: ।
एते नानार्थैर्लोभयन्ते गुणैर्मां,
कस्ते तैतेषां पात्रतां याति राजा ।।

हमारे मित्र मगधराज, काशिराज, वंगराज, सुराष्ट्रराज, मिथिला के शासक तथा शूरसेन नरेश हैं। ये सब विविध प्रकार से अपने-अपने गुणों के कारण मेरे मन को लुभाते हैं। इनमें से कौन सा राजा तुम्हारी (रानी की) समझ में योग्यतम पात्र बन सकता है? अवन्ति के शासक महासेन प्रद्योत इस प्रकार अपनी पुत्री के विवाह के सन्दर्भ में अपनी रानी से पूँछ रहे हैं। इन जनपदों के अतिरिक्त अवन्ति एवं वत्स जनपदों के नाम इस प्रसंग में प्रकारान्तर से प्राप्त होते हैं।

भास के एक अन्य नाटक अविमारक में सौवीर तथा कुन्तिभोज नामक दो अन्य जनपदों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। पाकिस्तान के सिन्ध प्रान्त में सिन्धु नदी के निचले काँठे का पुराना नाम सौवीर जनपद था। इस जनपद का

उल्लेख पाणिनि की अष्टाध्यायी में भी है।[17] इस प्रकार पाँचवी-चौथी शताब्दी ई0पू0 से यह जनपद अस्तित्व में था। प्राचीन भारतीय साहित्य में सिन्धु-सौवीर इन दो जनपदों नामों का जोड़ा प्रसिद्ध हो गया था। भौगोलिक दृष्टि से इन दोनों जनपदों की सीमाएँ एक दूसरे से सटी हुई थीं। पश्चिमी शक महाक्षत्रप रुद्र-दामन् प्रथम के शक संवत् 72 (150 ईसवी) के जूनागढ़ अभिलेख में जनपदों की एक लम्बी सूची मिलती है जिसमें सिन्धु-सौवीर का भी उल्लेख प्राप्त होता है जो उसके राज्य में सम्मिलित थे।[18]

जनपदों की एक अन्य सूची विशाखदत्त के मुद्राराक्षस नाटक में सुरक्षित है।[19] जनपदों की यह सूची प्राचीन परम्परा पर आधारित है अथवा राजनीतिक इतिहास के किसी समय विशेष की परिचायिका है, यह कहना, काफी कठिन है। चाणक्य कहता है कि उसको गुप्तचरों से ज्ञात हुआ है कि पाँच जनपदों के शासक उसकी योजना का विरोध कर रहे हैं:-

कौलूतश्चित्रवर्मा, मलयनरपतिः सिंहनादोनृसिंहः, काश्मीर पुष्कराक्षः क्षतरिपुमहिया सैन्धवः सिन्धुषेण मेघाख्यः पंचमोऽस्मिन्पृथुतुरगबलः पारसीकाधिराजो, नामान्येषां लिखामि ध्रुवमहमधुना चित्रगुप्तः प्रमार्ष्टु।।

कुलूत देश का राजा चित्रवर्मा, नरकेशरी मलय देश का नरेश सिंहनाद, काश्मीर का राजा पुष्कराक्ष; शत्रु महिमा को विनष्ट करने वाला सिन्धु देश का राजा सिन्धु-षेण और विशाल अश्वसेना वाला पारसीक देश का शासक मेघ पाँचवाँ शासक है। मैं इन सभी का नाम लिख रहा हूँ। चित्रगुप्त इनका परिमार्जन करें। इस प्रसंग में कुलूत (हिमांचल प्रदेश का कुल्लू-मनाली) मलय, काश्मीर, सिन्धु तथा पारसीक जन-पदों का उल्लेख हुआ है। इनमें से प्रथम चार प्राचीन भारत की सीमा के अन्दर तथा अंतिम एवं पाँचवाँ पारसीक संभवतः पश्चिमी सीमा पर स्थित रहा होगा।

कुलूत चन्द्रभागा या चेनाब नदी की घाटी में स्थित था। कुलूत की राज-धानी नगर थी। महाभारत में अर्जुन की उत्तर-पश्चिमी विजय के सन्दर्भ में इसका उल्लेख मिलता है।[20] मलय दक्षिण भारत में गोदावरी का क्षेत्र था। कश्मीर ~~यह~~ उत्तरी भारत का पर्वतीय प्रान्तर था जिसकी पहिचान वर्तमान जम्मू-कश्मीर से की जा सकती है। सिन्धु एक अत्यन्त प्राचीन जनपद था जिसके विषय में पाणिनि की

अष्टाध्यायी में उल्लेख प्राप्त होता है।[21] पाकिस्तान का वर्तमान सिन्ध प्रदेश का अधिकांश भाग सिन्धु जनपद में प्राचीन काल में स्थित था। चौथी-पाँचवी शताब्दी ईसवी में ससैनियन वंशीय शासकों का साम्राज्य प्राचीन भारत की पश्चिमी सीमा का स्पर्श करता था।[22]

शासन व्यवस्था

नाटकों के अध्ययन से राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। राजा का जो स्वरूप नाटकों के आधार पर सामने आता है उसके अनुसार राजा प्रशासनिक कार्यों में दक्ष, वीर, साहसी, न्याय-प्रिय, शास्त्रज्ञ, धार्मिक, कला-कौशल में निष्णात होता था। नाट्यकृतियों के अनुशीलन से जिस प्रकार का प्रशासनिक ढाँचा उभर कर सामने आता है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रशासन के प्रत्येक अंग पर धर्म का पुट दिया गया था। राजा को स्वयं प्रशासनिक कार्यों, दैनिक चर्या, युद्ध तथा कर प्रणाली आदि से सम्बन्धित मामलों में धर्म का अवलम्बन लेना पड़ता था। प्राचीन काल में भारत में राजा को विधायिका शक्ति प्राप्त नहीं थी, उसका मुख्य कार्य कार्यपालिका से सम्बन्धित था। राजधर्म, श्रुति स्मृति ग्रंथों, नीतिग्रंथों पर आधारित हुआ करता था।[23] राजा, अमात्य, सचिव आदि विधि का अध्ययन करते थे। न्यायाधीश न्यायालय में धर्मशास्त्र का आश्रय लेकर न्याय करते थे। समय के परिवर्तन के साथ जैसे-जैसे राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन होता गया, वैसे-वैसे धर्मशास्त्र से सम्बन्धित ग्रन्थों में किंचित् परिवर्तन आया।

राजधर्म के महद्भार का अत्यन्त प्रभावशाली वर्णन भास के अविमारक नामक नाटक में किया गया है[24] सब से पहले धर्म का विचार करना चाहिए तत्पश्चात् मंत्रियों के विचार-क्रम का अनुसरण करना चाहिए, रागद्वेष को गुप्त रखना चाहिए, कालोचितता के अनुसार दया और कठोरता का प्रयोग करना चाहिए, गुप्तचरों की सहायता से लोगों की मनोवृत्ति तथा पड़ोसी राजाओं के सन्दर्भ में अपनी नीति का निर्धारण करना चाहिए, अपने जीवन की यत्नपूर्वक रक्षा की जानी चाहिए परन्तु युद्ध में आगे होने पर उसका ध्यान छोड़ देना चाहिए।

धर्मः प्रागेन चिन्त्यः सचिवमतिगतिः प्रेक्षितव्या स्वबुद्धया,
प्रच्छाद्यौ रागद्वेषौ, मृदुपरुषगुणौ कालयोगेन कार्यौ।
ज्ञेयं लोकानुवृत्तं परचरनयनैर्मण्डलं प्रेक्षितव्यं,
रक्ष्यो यत्नादिहात्मा, रणशिरसि पुनः सोऽपि नावेक्षितव्यः।।

राजा के दैनिक कार्य

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राजा के दैनिक कार्य की सूची एक आदर्श राजा को ध्यान में रख कर बनाई गयी है। कौटिल्य ने दिन और रात को आठ-आठ भागों में विभाजित किया है। दिन के पूर्वार्द्ध के प्रथम भाग में राजा रक्षा सम्बन्धी कार्यों का निरीक्षण करे और पिछले दिन की आय-व्यय की जाँच करना चाहिए। दिन के दूसरे भाग में पुरवासियों तथा जनपदवासियों के कार्यों का निरीक्षण, तीसरे भाग में स्नान, भोजन, स्वाध्याय चौथे भाग में बीते दिन की अवशिष्ट आमदनी को सँभाले तथा विभिन्न कार्यों के लिए अध्यक्ष आदि को निर्देश, उत्तरार्द्ध के पाँचवें भाग में मंत्रिपरिषद से परामर्श गुप्तचरों से मंत्रणा, छठवे भाग में स्वतंत्र विहार एवं विचार करे, सातवे भाग में हाथी, घोड़े, रथ तथा अस्त्र-शस्त्रों का निरीक्षण, आठवें में सेनापति से युद्ध आदि के विषय में विचार-विमर्श करे। रात्रि के प्रथम भाग में गुप्तचरों से मिले, दूसरे भाग में स्नान, भोजन, स्वाध्याय तीसरे भाग में शयन और चौथे-पाँचवें भाग तक सोता रहे। पुनः रात्रि के छठवें भाग में जागकर अर्थशास्त्र सम्बन्धी तथा दिन में किये जाने योग्य कार्यों पर विचार करे, सातवें भाग में गुप्त मंत्रणा और गुप्तचरों को यथास्थान भेजे तथा अंतिम आठवें भाग में आचार्य, पुरोहित तथा ऋत्विक से आशीर्वाद ग्रहणकरें।[26] राजा के कार्य-क्रम पर मनुस्मृति से भी कुछ प्रकाश पड़ता है। मनु के अनुसार राजा रात के पिछले पहर में उठकर शौचादि के अनन्तर सावधान होकर प्रतिदिन अग्निहोत्र तथा ब्राह्मणों का सत्कार कर के श्रेष्ठजनों से युक्त सभा में जाये।[28] राज्यसभा में स्थित होकर राजा सभी प्रजाजनों को संतुष्ट करके विदा करे और इसके पश्चात् मंत्रियों सहित मध्याह्न से अर्द्धरात्रि तक धर्म, अर्थ एवं काम की चिन्ता करे।[30] याज्ञवल्क्य ने राजा द्वारा कोश की रक्षा पर सब से अधिक बल दिया है। इसके साथ ही साथ मंत्रियों के साथ गूढ़ बातों

पर विचार करना चाहिए। इसके पश्चात् सेनापति के साथ सेना का निरीक्षण कर के प्रगति आख्या लेना चाहिए। सायंकालीन क्रिया समाप्त करके गुप्तचरों से गोपनीय आख्या प्राप्त करना चाहिए, इसके बाद राजा को मनोरंजन तथा वेदाभ्यास में समय लगाना चाहिए। तत्पश्चात् शयन कक्ष में जाना चाहिए।[31] कामन्दक नीतिसार की रचना के समय तक आते-आते राजा के दैनिक कार्यक्रम में अंतर आ जाता है। कामन्दक के अनुसार राजा प्रातःकाल उठकर पवित्र होकर देवाराधन करे, तत्पश्चात् वस्त्राभूषण धारण कर मंत्रियों, पुरोहित, मित्रों तथा विदेशी लोगों से मिले। इसके पश्चात् अच्छे वाहन में बैठकर राजा स्वयं घोड़ों, हाथियों तथा सैनिकों की सुख-सुविधा का निरीक्षण करें।[32]

नाटकों में राजा के दैनिक कार्यों की इस प्रकार क्रमबद्ध सूची नहीं प्राप्त होती है। यत्र-तत्र जो संकेत उपलब्ध हैं उनसे प्रतीत होता है कि यथासंभव राजागण अपने दैनिक कार्यक्रम को निर्धारित एवं नियोजित ढंग से चलाते थे। प्रतिज्ञा यौगन्धरायण में अवन्ति के शासक महासेन से मिलने आये कतिपय राजाओं के दूतों का उल्लेख मिलता है।[33] राजा द्वारा ब्राह्मणों को प्रणाम करने में हाथ जोड़ने तथा मित्रों के सत्कार का उल्लेख प्राप्त होता है जिससे संकेत मिलता है कि राजा पुरोहित ब्राह्मण तथा मित्रों से एक निर्धारित समय पर मिलते थे।[34] कालिदास के मालविकाग्निमित्रम् नाटक में उल्लेख मिलता है कि जब सूर्य आकाश मण्डल के मध्य में पहुँच जाता है तो विदूषक पूर्णनिश्चय के साथ कहता है कि राजा के स्नान और भोजन का समय हो गया है।[35] नाटकों में प्रायः एक ऐसे राजा का चित्रण मिलता है जो प्रशासनिक कार्य का भार मंत्रियों को सौंप देता है और जिसका एक मात्र कार्य रानी अथवा रानियों की स्वाभाविक ईर्ष्या से उत्पन्न बाधाओं को दूर करके किसी नवीन प्रेयसी का संयोग सुख प्राप्त करना है। इस प्रकार उदाहरण भास के नाटकों में चित्रित वत्सराज उदयन है।[36]

प्रशासन में राजा के महत्त्व को नाटकों में स्वीकार किया गया है। प्रतिमा नाटक में उल्लेख मिलता है कि राजा राष्ट्र का रक्षक है। राजा के बिना प्रजा उसी प्रकार नष्ट हो जाती है जिस प्रकार बिना ग्वाले के गायें।[37]

गोपहीना यथागावो विलयं यान्त्यपालिता:।
एवं नृपतिहीना हि विलयं यान्ति वै प्रजा:।।

राजाओं को राज्य के प्रशासन के प्रति सदैव सचेष्ट रहने की सलाह दी गयी है। यह कहा गया है कि राज्य के प्रतिक्षण भर भी असावधानी नहीं करनी चाहिए।[38]

राजा की सुरक्षा व्यवस्था

प्राचीन भारत में राजा की सुरक्षा व्यवस्था के विषय में विशेष ध्यान दिया जाता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राजा की सुरक्षा व्यवस्था का विस्तृत विवरण मिलता है।[39] अर्थशास्त्र में कहा गया है कि राजा की सुरक्षा में स्त्री सैनिक रहें।[40] धर्मशास्त्रों में भी राजा की सुरक्षा पर विशेष सतर्कता रखने का निर्देश मिलता है। मनु ने भी राजा की सेवा में स्त्रियों को प्राथमिकता प्रदान की है।[41] प्रारम्भिक नाटकों में राजा की सुरक्षा के लिए सैनिकों को स्त्रियों के स्थान पर प्रमुखता दी गयी है।[42] राज्य के सीमान्त में राजा के जाने पर विशेष सुरक्षा व्यवस्था की जाती थी क्योंकि सीमान्त के दुरारक्ष्य होने के कारण भय की आशंका रहती थी। ऐसी स्थिति में राजा की सुरक्षा का विशेष प्रबन्ध किया जाता था।[43] गुप्त तथा गुप्तोत्तर काल के नाटकों में राजा की सुरक्षा में स्त्रियों को सैनिकों के रूप में नियुक्त कियेजाने के साक्ष्य मिलते हैं। अभिज्ञानशाकुन्तल[44]तथा मुद्राराक्षस[45] में राजा की सुरक्षा में यवनी (यूनानी स्त्रियाँ) सैनिकों की नियुक्ति का उल्लेख मिलता है।

रानी

भारतीय शासन व्यवस्था के सन्दर्भ में रानी अथवा रानियों की भूमिका के विषय में शास्त्रकारों ने कोई स्पष्ट विधान नहीं किया है। नाटकों के अध्ययन से ऐसा इंगित होता है कि राजाओं के एक से अधिक रानियाँ होती थी।[46]

दैनिक शासन में रानियों का किसी-न-किसी रूप में योग अवश्य रहा होगा। इस बात का संकेत मालविकाग्निमित्रम् नाटक से मिलता है कि रानी धारिणी की अपनी मुद्रिका (सील) है बंदिनी मालविका को कारागार से छुड़ाने के लिए जिसका उपयोग किया जाता है।[47] गुप्त काल के सन्दर्भ में वैशाली से प्राप्त ध्रुवस्वामिनी की मुद्रिका उल्लेखनीय है जिससे यह ज्ञात होता है कि रानियों की भी अपनी निजी मुद्राएँ होती थीं।[48]

राजकुमारों-राजकुमारियों की शिक्षा

प्राचीन काल में भारत में शिक्षा के महत्व को राजनीति के ग्रंथों में भी स्वीकार किया गया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राजा के लिए आन्वीक्षिकी की शिक्षा का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है।[49] मनु ने भी राजा तथा राजकुमारों के लिए आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति के अध्ययन पर जोर दिया है।[50] नाटकों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि धर्मशास्त्र, योगशास्त्र, बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र और न्यायशास्त्र आदि का राजकुमार अध्ययन करते थे।[51] भास के प्रतिज्ञा यौगन्धरायण में महासेन अपने दोनों राजकुमारों की शैक्षिक अभिरुचियों का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि मेरा सब से बड़ा पुत्र गोपालक अर्थशास्त्र के अध्ययन में रुचि रखता है और छोटे पुत्र पालक की संगीत के स्थान पर व्यायाम (शारीरिक शिक्षा) में गहरी रुचि है:[52]

> अर्थशास्त्रगुणग्राही ज्येष्ठो गोपालक: सुत:।
> गान्धर्वद्वेषी व्यायामशाली चाप्यनुपालक:।।

लव-कुश की शिक्षा के प्रसंग में भवभूति ने अपने उत्तर रामचरितम् नाटक में उल्लेख किया है कि चूड़ाकर्म होने के बाद वेदों को छोड़कर तीन विद्याओं (आन्वीक्षिकी, वार्ता, (कृषि-व्यापार) तथा दण्डनीति) का उन्हें अध्ययन कराया। इसके पश्चात् ग्यारह वर्ष की आयु पूरी हो जाने के बाद क्षत्रिय-विधि से उपनयन संस्कार करके उन्हें महर्षि वाल्मीकि ने उन्हें वेद पढ़ायाथा।[53]

राजकुमारियों को संगीत, नृत्य, चित्रकला आदि की शिक्षा दी जाती थी। भास के प्रतिज्ञायौगन्धरायण नामक नाटक से ज्ञात होता है कि वासवदत्ता को संगीत में वीणावादन सीखने की बड़ी उत्कट अभिलाषा थी।[54] कालिदास के मालविकाग्निमित्रम् नाटक में मालविका के गणदास से नृत्य और संगीत सीखने का उल्लेख है।[55] इसी नाटक में अग्निमित्र की दो कला-निपुण युवतियों से भेंट किये जाने की चर्चा है।[56] हर्षकृत प्रियदर्शिका नाटिका में उल्लेख मिलता है कि प्रियदर्शिका को संगीत, नृत्य तथा वाद्य आदि की शिक्षा दी गयी थी।(गीत नृत्त वाद्यादिषु शिक्षयितव्या)।[57]

प्रियदर्शिका के तृतीय अंक में उल्लेख मिलता है कि प्रियदर्शिका वीणा बजा कर गा रही है और वत्सराज उदयन गीत को सुनकर कहते हैं कि पुष्प, कल, तल, बिन्दु, रेफ, निःस्वनित, निष्कोटित, उन्मृष्ट अवमृष्ठ: तथा निबन्धन नामक दस प्रकार के स्वर स्फुट हो रहे हैं। द्रुत, मध्य तथा विलम्बित नामक तीन प्रकार के लय प्रकट हो रहे हैं। समा, स्रोतोगता तथा गोपुच्छ नामक तीन प्रकार की यतियाँ क्रमशः बनी हैं। तत्व, ओघ और अनुगत नामक तीन वाद्य के प्रकार इसमें स्फुट दिखलाये गए हैं:[58]

> व्यक्तिर्व्यञ्जनधातुना दशविधेनाप्यत्र लब्धाधुना,
> विस्पष्टो द्रुतमध्यलम्बितपरिच्छिन्नस्त्रिधायं लयः।
> गोपुच्छप्रमुखाः क्रमेण यतयस्तिस्रोऽपि संपादिता-
> स्तत्वौघानुगताश्च वाद्यविधयः सम्यक्त्रयो दर्शिताः।।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक,[59] तथा हर्षकृत रत्नावली नाटिका[60] एवं नागानन्द[61] नाटक में चित्रकला है जहाँ संभ्रान्त स्त्रियों और राजकुमारियों द्वारा चित्र बनाने के विषय में साक्ष्य मिलते हैं। इन उपर्युक्त उल्लेखों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राजकुमारियों की शिक्षा में अन्य विषयों के साथ-साथ ललित कलाओं से सम्बन्धित पाठ्यक्रम का समावेश होता था।

मंत्री एवं मंत्रिपरिषद

नाटकों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि शासन कार्य में राजा की सहायता के लिए मंत्री तथा मंत्रीपरिषद होती थी। भास के नाटकों में सचिव[62] तथा सर्व सचिव मण्डल[63] शब्दों का प्रयोग मंत्री एवं मंत्रिपरिषद के अर्थ में किया गया है। कौटिल्य अमात्य, मंत्री और सचिव का वर्णन करते हुए उनके कार्यों तथा योग्यता की अलग-अलग व्याख्या की है।[64] अमात्य के विषय में कौटिल्य का विचार है कि धर्म, अर्थ, काम और भय द्वारा परीक्षित पवित्र अमात्यों को उनकी कार्य क्षमता के अनुसार कार्य भार सौंपना चाहिए।[65] अमात्यों में से धर्मस्थानीय, कोषाध्यक्ष, समाहर्त्ता तथा मंत्री आदि की नियुक्ति होती थी।[66] कौटिल्य के समान मनु ने भी अमात्य के समकक्ष अधिकारी को सचिव कहा है।[67] कामन्दक नीतिसार के अनुसार अमात्य मुख्य रूप से राजा को नगर, ग्राम, जमीन, वन तथा राजस्व के विषय में सूचनाएँ उपलब्ध कराता था, जब कि सचिव मुख्य रूप से युद्धमंत्री के रूप में कार्य करता था और राजा को सैन्य-सामग्री, उपकरण, हाथी, घोड़ों, रथों तथा पैदल सैनिकों आदि के सम्बन्ध में सूचनाएँ प्रदान करता था।[68] मंत्रियों की योग्यता पर कौटिल्य के अर्थशास्त्र से विशेष प्रकाश पड़ता है।[69] कामन्दकनीतिसार के अनुसार सचिव को उच्चकुलीन, सच्चरित्र, स्वस्थ, बलवान नेतृत्व शक्ति से युक्त, आत्मसंयमी, साहसी, दृढ़ तथा धैर्यवान होना चाहिए।[70] मंत्रियों में गोपनीयता का विशेष महत्व रहा है। कौटिल्य ने मंत्रणा में गोपनीयता को विशेष महत्व प्रदान किया है।[71] कामन्दक ने मंत्रियों में गोपनीयता को राजा का बीज और राज्य की जड़ की संज्ञा प्रदान की है।[72]

अभिलेखीय साक्ष्यों से भी सचिवों के विषय में प्रकाश पड़ता है। रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख में मतिसचिव और कर्मसचिव इन दो प्रकार के सचिवों का उल्लेख आता है। (मतिसचिवकर्मसचिवैरमात्य)।[73] मतिसचिव संभवतः एक प्रकार से परामर्शदाता थे, जब कि कर्मसचिव अधिशासी अधिकारी प्रतीत होते हैं। सचिव निर्भीक ढंग से शासन को गंभीर प्रशासनिक कार्यों पर अपनी स्पष्ट सम्मति से अवगत कराते थे। गुप्तकाल के चन्द्रगुप्त द्वितीय के उदयगिरि गुहालेख से ज्ञात होता है कि सचिव का पद वंश परम्परागत हो गया था (अन्वय प्राप्त साचिव्यो)[74]।

चन्द्रगुप्त द्वितीय के वीरसेन नामक सचिव को पाटलिपुत्र का निवासी [पाटलिपुत्रक:] तथा सन्धिविग्रहिक सचिव बतलाया गया है। वह चन्द्रगुप्त द्वितीय के साथ वह शक-अभियान के सन्दर्भ में पूर्वी मालवा में आया था। इस से ऐसा संकेत मिलता है कि सचिव भी युद्ध कार्यों में भाग लेते थे।

भास के प्रतिज्ञायौगन्धरायण तथा स्वप्नवासवदत्तम् नाटकों में यौगन्धरायण नामक एक अत्यन्त नीतिनिपुण मंत्री का उल्लेख मिलता है जिसका लोहा उसके विरोधी भी मानते थे। वह महासेन के बन्धन से उदयन को हर स्थिति में छुड़ाने का संकल्प लेता है।[76]

रिपुनृपनगरे वा बन्धने वा वने वा,
समुपगतविनाशः प्रेत्य वा तुल्यनिष्ठम्।
जितमिव कृतबुद्धिं वंचयित्वा नृपंतं
पुनरधिगतराज्यः पार्थिवः श्लाघनीयम्।।

यौगन्धरायण हर परिस्थिति में अपनी निष्ठा का परिचय देने को उद्यत है। वह शत्रु सेना आक्रान्त अपने राजा उदयन को छुड़ा कर ही रहेगा[77]-

यदि शत्रुबलग्रस्तो राहुणा चन्द्रमा इव।
मोचयामि न राजानं नास्ति यौगन्धरायणः।।

सचिव का पद बहुत स्पृहणीय नहीं है। यदि नीति सफल होती है, तो लोग राजा के बल का जय जयकार करते हैं, यदि विपत्ति आती है, तब मंत्री की अक्षमता को दोषी ठहराया जाता है। अपने बुद्धिबल से फूले हुए बेचारे मूर्ख "अमात्य" की ऊँची तथा सुनने में मधुर उपाधि प्राप्त करते हैं और असफल होने पर तीक्ष्ण दंड पाते हैं[78]

प्रसिद्धौ कार्याणां प्रवदति जनः पार्थिवबलम्,
विपत्तौ विस्पष्टं सचिवमतिदोषं जनयति।
अमात्या इत्युक्ताः श्रुतिसुखमुदारं नृपतिभिः,
सुसूक्ष्मं दण्ड्यन्ते मतिबलविदग्धाः कुपुरुषाः।।

विशाखदत्त के मुद्राराक्षस नाटक में चन्द्रगुप्त मौर्य के मंत्री चाणक्य तथा नन्द वंश के स्वामिभक्त मंत्री राक्षस की कथा को आधार बनाकर नाटक का ताना-बाना बुना गया है। चाणक्य चन्द्रगुप्त का गुरू, परामर्शदाता आदि सभी कुछ है। वह नगर बाहर एक पर्ण कुटी में रहता है।[79] इसी प्रकार राक्षस एक स्वामिभक्त, नीतिज्ञ तथा कुशल योद्धा है।[80] अमात्य राक्षस एक कुशल योद्धा था। रण क्षेत्र में विपक्षी योद्धा उसके सामने सिर झुका लेते थे तभी तो राजा नन्द उसको अधिक सम्मान देते थे। आभिज्ञान शाकुन्तलम् में आर्य पिशुन नामक मंत्री का उल्लेख मिलता है जो राजकार्य का विवरण राजा के पास भेजा करता था।[81] ऐसा प्रतीत होता है कि शासन कार्य में सहायता देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् होती थी मंत्रिपरिषद् के विषय में कालिदास के मालविकाग्निमित्रम् नाटक में उल्लेख प्राप्त होता है।[82] विशाखदत्त कृत मुद्राराक्षस नाटक से यह ज्ञात होता है कि मंत्रिपरिषद् के मंत्रियों में एक मंत्रि-मुख्य होता था।[83] राजा जिस बात को मंत्रिपरिषद के सम्मुख रखता था, मंत्रिपरिषद् उसी पर विचार करती थी। राजा मंत्रियों द्वारा दिये गए परामर्श पर विचार करके अंतिम निर्णय लेता था।[84] मंत्रिपरिषद् की कार्य-पद्धति के विषय में कोई निश्चित साक्ष्य नाटकों में नहीं प्राप्त होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मंत्रिपरिषद् अपनी सम्मति को अमात्य के माध्यम से राजा को अवगत करा देती थी। अमात्य के लिए यह आवश्यक नहीं था कि वह मंत्रिपरिषद के निर्णय को राजा तक पहुँचाये। अमात्य राजा के किसी विश्वासपात्र अधिकारी अथवा कंचुकी आदि के माध्यम से उसको राजा को सूचित करता था।[85] अमात्य स्वयं अत्यन्त गोपनीय सम्मति से राजा को अवगत कराते थे।[86]

मंत्रिपरिषद् का गठन किस प्रकार होता था, इसके विषय में नाटकों से कोई स्पष्ट जानकारी नहीं प्राप्त होती है। अर्थशास्त्र में तीन या चार से अधिक मंत्रियों से मंत्रणा करने का उल्लेख मिलता है।[87] महाभारत के शान्तिपर्व में मंत्रि-परिषद में मंत्रियों की कुल संख्या आठबतलायी गयी है।[88] कामन्दक नीतिसार में मंत्रिपरिषद में मंत्रियों की संख्या के विषय में कुछ नहीं कहा गया है, उससे केवल इतनी जानकारी प्राप्त होती है कि मंत्रि-परिषद् में एक पुरोहित भी होता था।[89]

भास के प्रतिज्ञा यौगन्धरायण नाटक से ऐसा ज्ञात होता है कि संभवत: मंत्रिपरिषद् जैसी कोई प्रशासनिक संस्था अवश्य थी जिसे इसमें "सर्वसचिव मण्डल" कहा गया है।[90] कालिदास के मालविकाग्निमित्रम् नाटक में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि राजा की अनुपस्थिति में मंत्रियों को महत्वपूर्ण मुद्दों पर निर्णय लेना चाहिए और अंतिम निर्णय के लिए राजा के पास भेज देना चाहिए।[91]

सामन्त-व्यवस्था

ईसवी सन् की पाँचवीं शताब्दी से लेकर पन्द्रहवीं शताब्दी तक के काल को यूरोप के इतिहास में सामन्त-व्यवस्था का काल कहा जाता है। सामन्त-व्यवस्था की सही व्याख्या के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। यूरोपीय सामन्तवाद में कभी प्रभु या सार्वभौम शासक और सामन्त के अनुबन्धात्मक निहित कानूनी पक्ष पर जोर दिया जाता है और कभी आर्थिक पक्ष अर्थात् कम्मी प्रथा के प्रचलन पर।[92] ऐसा कहा जा सकता है कि सामन्त-व्यवस्था का राजनीतिक और प्रशासनिक ढाँचा भूमि अनुदानों के आधार गठित था और सामाजिक ढाँचा कृषि दासत्व पर आधारित था।

भारत में सामन्त-व्यवस्था के विषय में अनुसंधान कार्य हुए हैं।[93] सामन्त शब्द कौटिल्य के अर्थशास्त्र[94] तथा मनुस्मृति[95] में मिलता है। अर्थशास्त्र में सामन्त शब्द स्वतंत्र पड़ोसी शासक के रूप में हुआ है। मनुस्मृति में भी पड़ोसी के अर्थ में सामन्त शब्द का प्रयोग हुआ है। चौथी-पाँचवीं शताब्दी ईसवी (गुप्त काल) से सामन्त शब्द का प्रयोग अधीनस्थ शासक के रूप में मिलने लगता है। कालिदास के रघुवंश महाकाव्य में सामन्त शब्द दो बार प्रयुक्त हुआ है।[96] समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में अधीनस्थ राजाओं से सर्वकरदानाज्ञाकरण, प्रणामागमन, आत्मनिवेदन और कन्योपायनदान आदि अपेक्षित था किन्तु इस में स्पष्ट रूप से सामन्त शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है।[97] वैन्यगुप्त के गुणइघर ताम्रपत्र लेख में महाराज श्री महासामन्त विजयसेन नामक एक स्थानीय अधिकारी का उल्लेख मिलता है।[98]

सामन्त व्यवस्था के उदय एवं विकास के सन्दर्भ में अनेक परिस्थितियों का योगदान माना जा सकता है। विदेशी आक्रमण एवं केन्द्रीय सत्ता की दुर्बलता को एक कारण माना जा सकता है। हूण आक्रमण के फलस्वरूप गुप्त साम्राज्य की जड़ें हिल गयीं थीं।[99] साम्राज्य के पतन से अनेक महत्वाकांक्षी प्रान्तीय शासकों तथा सेनानायकों ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया।[100] छोटे-छोटे राज्यों का उदय और प्रशासनिक अधिकारियों का भूमि से जुड़ जाना सामन्तवाद के उदय का एक प्रमुख कारण बना।[101] सामन्तवाद के उदय में आर्थिक विपन्नता का भी महत्वपूर्ण योगदान माना जा सकता है। गुप्तोत्तर काल में व्यापार-वाणिज्य के ह्रास के फलस्वरूप सिक्कों का अभाव मिलता है।[102] कौशाम्बी, अहिच्छत्र आदि पुरास्थलों के उत्खनन से प्राप्त साक्ष्य भी गुप्तोत्तर काल की आर्थिक विपन्नता का दृश्य उपस्थित करते हैं।[103] आर्थिक दबाव के फलस्वरूप कृषि को अधिकांश लोगों ने अपना लिया। इन परिस्थितियों के कारण अर्थ-व्यवस्था का स्थानीयकरण हुआ जो गाँवों के आत्म-निर्भर इकाइयों के रूप में विकास पर दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार एक ओर भूमि सम्पन्न अभिजातवर्ग और कृषकों के मध्य तथा दूसरी ओर सत्ता-सम्पन्न कुलीन वर्ग के मध्य सामन्तीय सम्बन्धों के सूत्रपात के लिए अनुकूल वातावरण बना।[104] ऐसी अर्थव्यवस्था में जिसमें मुद्रा का अभाव था, वाणिज्य-व्यापार ह्रास की ओर उन्मुख था, उसमें किसी शासक के पास अधिकारियों, सैनिकों आदि को भूमि अनुदान के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं था। इसके अतिरिक्त ब्राह्मणों पुरोहितों आदि को भूमि अनुदान बड़े पैमाने पर दिये गए। भूमि अनुदान देने से सत्ता का विकेन्द्रीयकरण हुआ जिससे केन्द्रीय राजसत्ता कमजोर हुई।[105] नाटकों में दो ऐसे सन्दर्भ प्राप्त होते हैं जिनमें सामन्त व्यवस्था पर किंचित् प्रकाश पड़ता है। ये दोनों सन्दर्भ काल-क्रम की दृष्टि से गुप्तकाल से सम्बन्धित माने जा सकते हैं। प्रथम उदाहरण कालिदास कृत विक्रमोर्वशीयम् नाटक में प्राप्त होता है जिसमें पुरुरवा विदूषक माणवक से कहता है कि हे मित्र। उस स्वच्छन्द प्रभुत्व से जिसमें सामन्तों की मुकुटमणियों की प्रभा से मेरा पादपीठ रंजित हो जाता है, मुझे उतना आनंद नहीं मिलता है जितना इस रमणी {उर्वशी} के आज्ञापालन का अवसर पाकर आज हो रहा है:

सामन्तमौलिमणिरंजितपादपीठ-
मेकातपत्रमवनेर्न तथा प्रभुत्वम्।
अस्या: सखे चरणयोरहमद्य कान्त-
माज्ञाकरत्वमधिगम्य यथा कृतार्थ: ।।.

यहाँ पर सामन्त शब्द का प्रयोग स्पष्टत: अधीनस्थ शासक के रूप में किया है। सार्वभौम शासक के प्रभुत्व की ओर भी इंगित किया गया है। अधीनस्थ सामन्त शासक सार्वभौम शासक के प्रति सम्मान प्रदर्शित करने के लिए उसको सिर झुका कर प्रणाम करते थे।

दूसरा उल्लेख मुद्राराक्षस नाटक की प्रस्तावना में मिलता है। विशाखदत्त का परिचय सामन्त वटेश्वरदत्त के पौत्र तथा महाराज उपाधि से युक्त पृथु के पुत्र के रूप में दिया गया है। (आज्ञापितोऽस्मि परिषदा यथाद्यत्वया सामन्तवटेश्वर-दत्तपौत्रस्य महाराज पदभाक् पृथुसूनो: कवेर्विशाखदत्तस्य कृतिरभिनवं मुद्राराक्षसं नाम नाटकं नाटयीतव्यमिति)।[107] इससे ऐसा संकेत मिलता कि विशाखदत्त का जन्म किसी सामन्त परिवार में हुआ था क्योंकि गुप्त काल तक आते-आते महाराज उपाधि भी अधीनस्थ शासक की हो गई थी। सामन्त तो स्पष्टत: अधीनस्थ राजनीतिक स्थिति का द्योतक है।

प्रशासनिक पदाधिकारी

प्रशासनिक पदाधिकारियों के विषय में यत्र-तत्र उल्लेख प्राप्त होते हैं। जिन अधिकारियों के नाम मिलते हैं, उनके विषय में यह कहना कठिन है कि उनमें से किनको प्रान्तीय अधिकारी माना जाय और किनको केन्द्रीय अधिकारी। नाटकों में अमात्य सचिव के अतिरिक्त जिन अन्य प्रशासनिक अधिकारियों के उल्लेख मिलते हैं उनमें प्रतीहार[108] या प्रतीहारी, सैनिक,[109] विट,[110] चेट,[111] दूत,[112] गुप्तचर,[113] आदि प्रमुख हैं। प्रतीहार केवल द्वारपाल ही नहीं होते थे बल्कि उन पर राजा की सुरक्षा का दायित्व भी होता था। अभिज्ञान शाकुन्तलम् में चोरों को पकड़ने के लिए सामान्य नगर-रक्षकों (सिपाहियों) का उल्लेख मिलता है।[114] मृच्छकटिक के छठवें

अंक में वीरक और चन्दनक नामक दो नगर रक्षकों (सिपाहियों) के विषय में उल्लेख प्राप्त होते हैं।[116] ऐसा प्रतीत होता है कि राजा के पदाधिकारियों एवं कर्मचारी अपने कर्तव्य का ठीक से पालन नहीं करते थे। बल्कि अपने कर्तव्य पालन में परस्पर ईर्ष्या का भाव रखते थे। इन दोनों नगर रक्षकों में जातिगत विवाद की भी झलक मिलती है और दोनों एक दूसरे की जाति पर आक्षेप करते हैं।[117]

राजाओं ने दैनिक प्रशासन चलाने के लिए दण्डाधिकारी, रक्षक और बंदी-गृह के कर्मचारी नियुक्त कर रखे थे। नाटकों में चोर, जुआरी, धूर्त, आदि से नगरों के संभ्रान्त नागरिकों की रक्षा के लिए दण्डाधिकारी होते थे जो अपराधियों को पकड़ कर बन्दी बनाते थे। मुद्राराक्षस में इस प्रकार के कर्मचारियों को काल-पाशिक और दण्ड पाशिक कहा गया है।[118] शासन से सम्बन्धित आदेशों को लिपि बद्ध करने के लिए कायस्थ नामक कर्मचारी होता था। मुद्राराक्षस नामक नाटक में कायस्थ के अधीनस्थ चित्रगुप्त नामक एक अन्य कर्मचारी का उल्लेख प्राप्त होता है।[120] गुप्त काल में कायस्थ का उल्लेख नगर की प्रशासन से सम्बन्धित अधिकारी के रूप में मिलता है। कर-व्यवस्था से सम्बन्धित कर्मचारी नाटकों में राजपुरूष कहे गये हैं। मृच्छकटिक नाटक में उल्लेख मिलता है कि नगर में शुल्क वसूल करने वाले राजकीय कर्मचारी दुकानों के चतुर्दिक उसी प्रकार चक्कर काटते हैं, जिस प्रकार भौंरे फूले हुए वृक्षों के चारो ओर मँडराते रहते हैं।[121] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि जनता कर-वसूल करने वाले कर्मचारियों से त्रस्त थी। गुप्तचर व्यवस्था के सन्दर्भ में भी विवरण मिलते हैं।[122]

सैन्य-व्यवस्था

प्राचीन काल में सेना शासन का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग थी। सेना के सम्बन्ध में व्यवस्थित और क्रमबद्ध विवरण नहीं मिलते हैं किन्तु जो संकेत यत्र-तत्र मिलते हैं उनसे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राजाओं के पास स्थायी सेना होती थी और सेना की देख-रेख के लिए कतिपय सैनिक अधिकारी होते थे। राजा

सेना का सर्वोच्च अधिकारी था, किन्तु सेना सम्बन्धी प्रशासन सेनापति अथवा प्रधान सेनापति देखते थे।[123] आवश्यकता पड़ने पर सचिव एवं अमात्य भी सैन्य संचालन करते थे तथा युद्ध करते थे। सेनापति की सहायता के लिए हाथी और घुड़सवार सैनिक के अलग-अलग पदाधिकारी होते थे जिन्हें अध्यक्ष कहा जाता था। मुद्राराक्षस नाटक में गजाध्यक्ष भद्रभट्ट, और अश्वध्यक्ष पुरूषदत्त का उल्लेख प्राप्त होता है।[125] गुप्त काल के अभिलेखों में बलाधिकृत्य और महाबलाधिकृत नामक सैनिक अधिकारियों का उल्लेख प्राप्त होता है।[126] ऐसा प्रतीत होता है कि कदाचित् ये सम्पूर्ण सेना के सेनापति रहे होंगे।

नाटकों में सामान्य प्रशासन का जो चित्र इंगित होता है उससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि शासन-प्रबन्ध बहुत शिथिल था। राजा के कर्मचारी और अधिकारी जनता को अनेक प्रकार के कष्ट पहुँचाते थे। राजाओं के सम्बन्धी प्रजा पर घोर अत्याचार करते थे। राज्य में अव्यवस्था फैली हुयी थी धूर्तों का बोल-बाला था। रात में संभ्रान्त नर-नारियों का अशान्ति और अव्यवस्था के कारण नगरों के राजमार्गों में निकलना कठिन था।[127] राजमार्गों में चोर, धूर्त, और अन्य असामाजिक तत्व घूमते रहते थे।

न्याय-व्यवस्था

न्याय-व्यवस्था के भी विषय में नाटकों के अध्ययन से कुछ प्रकाश पड़ता है। राजा स्वयं सर्वोच्च नन्यायाधीश होता था। न्यायालयों के निर्णय के विरूद्ध राजा के सम्मुख अपील की जा सकती थी। राजा न्यायाधीश के रूप में जिस आसन पर बैठता था, उसको धर्मासन कहा जाता था।[128] यदि राजा अस्वस्थ होता था अथवा किन्हीं अन्य कार्यों में व्यस्त होता था तो उस अवस्था में राजधानी का सर्वोच्च न्यायाधीश उसका आसन ग्रहण करता था। मृच्छकटिक नाटक में न्याय-व्यवस्था पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इस नाटक में उज्जयिनी नगर के न्यायालय को अधिकरण मंडप कहा गया है।[129] और न्यायाधीश को अधिकरण करणिक कहा

गया है।[130] न्यायाधीश की योग्यता के विषय में कहा गया है कि उसे शास्त्रज्ञ छल-कपट को जानने में कुशल, कुशल वक्ता, क्रोध रहित, शत्रु एवं मित्र दोनों के बीच समान आचरण करने वाला, दुर्बलों का रक्षक, धार्मिक, निर्लोभी, धूर्तों को दण्ड देने वाला, होना चाहिए।[131] न्यायाधीश की सहायता के लिए नगर श्रेष्ठि, राज-पुरुष, दूत, गुप्तचर और कायस्थ आदि कर्मचारी होते थे।[132]

मृच्छकटिक से न्यायालय की कार्य-पद्धति पर भी प्रकाश पड़ता है। न्याया-लयों में आज कल की तरह अपनी ओर से किसी अपराध पर विचार नहीं किया जाता था, बल्कि न्यायालय तभी किसी मामले पर विचार करता था जब जनता अपनी ओर से न्यायालय के सम्मुख कोई वाद उपस्थित होने पर न्यायालय द्वारा प्रतिवादी को न्यायालय में उपस्थित होने का आदेश जारी किया जाता था। नियत दिन पर न्यायालय में उपस्थित न होने पर प्रतिवादी को गिरफ्तार करके न्यायालय के समक्ष उपस्थित किया जाता था।

प्रतिवादी को अपनी बात कहने का पूरा अवसर दिया जाता था। न्यायालय में संभ्रान्त व्यक्तियों को बैठने के लिए आसन दिया जाता था।[134] न्यायाधीश वादी एवं प्रतिवादी के साथ सहानुभूति, शिष्टता के साथ व्यवहार करते थे।[135] वादी एवं प्रतिवादी के कथन को लेख बद्ध कर दिया जाता था।[136] साक्षी देने वाले व्यक्ति को शपथ देते थे कि वे सत्य बोलेंगे। केवल तपस्वी, कुलीन, सत्य-वादी, धार्मिक और धनी व्यक्ति गवाही दे सकते थे।[137] यदि उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर न्यायालय किसी निश्चित पर नहीं पहुँच पाता था तो दिव्य परीक्षा का सहारा लिया जाता था। मृच्छकटिक में चार प्रकार के दिव्य परीक्षाओं का उल्लेख मिलता है।[138] (1) विष परीक्षा, (2) जल परीक्षा (3) तुला परीक्षा और (4) अग्नि परीक्षा। कदाचित् दिव्य परीक्षा का अवसर आने से अपराधी अधीर हो उठते रहे होंगे और इस प्रकार न्यायालय का समाधान अपने आप हो जाता रहा होगा। न्यायाधीश निर्णय स्मृतियों के आधार पर करते थे। किन्तु न्यायाधीशों के फैसले का अन्तिम निर्णय राजा की स्वीकृति के पश्चात् ही लागू होता था। दण्ड कठोर थे। हत्या के अपराध के लिए मृत्यु दण्ड दिया जाता

जाता था। मृत्यु-दण्ड के लिए अपराधियों को चाण्डालों को सौंप दिया जाता था। मृत्यु-दंड प्राप्त अपराधी को बधिक राजमार्ग से बध-स्थान तक ले जाते थे। मार्ग में जगह-जगह रूक-रूक कर और ढोल पीट-पीट कर अपराधी के अपराध की घोषणा की जाती थी। शूली पर चढ़ाकर, तलवार से सिर काटकर, आरे से चीर कर, या कुत्तों से नुचवा कर प्राण दण्ड दिया जाता था। मुद्रा राक्षस में हाथी के पैर से कुचलवा कर मृत्यु दण्ड दिये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है।[139]

राजकुल में कोई हर्षोत्सव होने पर अपराधियों को दण्ड से मुक्त भी कर दिया जाता था। कुछ विशेष परिस्थितियों में जेल में बंद अपराधियों को छोड़ने की प्राचीन परम्परा का उल्लेख कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलता है।

नाटकों के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायाधीश निर्णय करने में स्वतंत्र नहीं रह गये थे। उन्हें राजा और उनकी कृपा पात्रों का भय बराबर बना रहता है। राजा के सम्बन्धी न्यायाधीशों को डराते-धमकाते रहते थे। न्यायाधीशों को यह भय बना रहता था कि न जाने किस समय उन्हें उनके पद से च्युत कर दिया जाए। ऐसी स्थिति में कहाँ यह कहाँ तक पक्षपात रहित होकर न्याय करते रहे होंगे, यह कहना कठिन है।

शासन व्यवस्था का जो स्वरूप नाटकों के अध्ययन से ज्ञात होता है, उसका समर्थन समकालीन अन्य साहित्यकों एवं अभिलेखीय साक्ष्यों से होती है। न्याय — व्यवस्था के सन्दर्भ में अधिक यथार्थ पूर्ण विवरण मिलता है।

सन्दर्भ

1• दशरूपक 1•15-16

2• मृच्छकटिक, अंक 9

3• मजूमदार आर0 सी0 [सं0] दि एज ऑव इंपीरियल युनिटी बम्बई 1968 पृष्ठ 120 53

4• राय, यू0 एन0 गुप्त राजवंश तथा उस का युग इलाहाबाद 1977

5• मिराशी, वी0वी0 वाकाटक राजवंश का इतिहास और अभिलेख, वाराणसी 1964

6• मजूमदार, आर0 सी0 एंड अल्तेकर, ए0 एस0 दि वाकाटक-गुप्त एज दिल्ली 1960

7• त्रिपाठी, आर0 एस0 हिस्ट्री ऑव कनौज, वाराणसी 1987

8• थपल्याल, के0 के0 इंस्क्रिप्शन्स ऑव दि मौखरीज, लेटर गुप्ताज, पुष्यभूतिज एंड यशोवर्मन ऑव कनौज दिल्ली 1985

9• बाल चरितम् अंक 5•20

10• विष्णु पुराण

उत्तरं यत्समुद्रास्य, हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्, वर्षंतद्भारतं नाम, भारती यंत्रसंततिः।।

11• प्रतिज्ञा यौगन्धरायण, अंक 4•25 •

12• मृच्छकटिक, अंक 10•61

13• मुद्राराक्षस, अंक 7•19

14• रायचौधरी, एच0 सी0 पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑव एंश्यन्ट इंडिया [षष्ठ संस्करण] कलकत्ता 1953 पृष्ठ 95-96

15• प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अंक 2•8

16• अविमारक, अंक 1

17• अग्रवाल, वासुदेवशरण, पाणिनि कालीन भारतवर्ष [द्वितीय संस्करण] वाराणसी 1969 पृष्ठ 63-64

18• सरकार, डी0सी0 सेलेक्ट इंस्क्रिप्शन्स [द्वितीय संस्करण] कलकत्ता, 1965 पृष्ठ 178

19• मुद्राराक्षस, अंक 1•20

20• महाभारत सभापर्व 27•5-16

21• अग्रवाल, वासुदेव शरण, पूर्वोद्धरित पृष्ठ 62

22. मजूमदार, आर० सी० एंड अल्तेकर, ए० एस० पूर्वोद्धरित पृष्ठ 19-20

23. मनुस्मृति

24. अभिज्ञानशाकुन्तल अंक 1.12

25. अर्थशास्त्र (संपादक) वाचस्पति गैरोला 1.14.18

26. वही 1.14.18

27. सिन्हा, बी० पी० <u>पोस्ट-गुप्ता पॉलिटी</u> कलकत्ता, 1972 पृष्ठ 23

28. मनुस्मृति 7.145

29. वही 7.146

30. वही 7.151

31. याज्ञवल्क्य स्मृति (संपादक) नारायण राम आचार्य, दिल्ली 1985 1.328-30

32. कामन्दकनीतिसार 15.46-48

33. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अंक 2

34. वही, अंक 1.8

35. मालविकाग्निमित्रम्, अंक 2

36. स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायण

37. प्रतिमानाटकम् अंक 3.24

38. प्रतिमानाटकम् अंक 4

    राज्यं नाम मुहूर्तमपि नोपेक्षणीयम्।

39. अर्थशास्त्र 1.16.20

40. वही 1.16.20 स्त्रीगणैर्धन्विभिः परिगृह्येत।

41. मनुस्मृति 7.217-19

42. प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अंक 1

43. प्रतिज्ञा यौगन्धरायण अंक 1

    दूरारक्षगासन्नदोषाणि विषयान्तराणि।-----

    तत् पदातिमात्राधिष्ठितमिदं यूथं कृत्वा सर्व एवं

    गच्छामः, नैकाकिना स्वामिना गन्तव्यमिति।

44• अभिज्ञान शाकुन्तलम्, अंक 2

45• मुद्राराक्षस, अंक 3

46• अभिज्ञान शाकुन्तलम् अंक 5, मालविकाग्निमित्रम् अंक,3 रत्नावली अंक 1,
प्रियदर्शिका 2

47• मालविकाग्निमित्रम्, अंक 4

48• राय, यू0 एन0 पूर्वोद्धरित पृष्ठ 205

49• अर्थशास्त्र 1•1•3

50• मनुस्मृति 7•43

51• प्रतिमा नाटकम् अंक 5

मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वर योगशास्त्रम्,
बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं, मेधातिथेर्न्यायशास्त्रम्•••••।

52• प्रतिज्ञा यौगन्धरायण अंक 2•13

53• उत्तर रामचरितम् अंक 2

निवृत्त चौलकर्मणोस्तयोस्त्रयीवर्जमितरास्तिस्त्रो विद्या:
सावधानेन परिनिष्ठापिता:। तदनन्तरं भगवतैकादशे
वर्षे क्षात्रेण कल्पेनोपनीय त्रयीविद्यामध्यापितौ।

54• प्रतिज्ञा यौगन्धरायण, अंक 2

उत्तराया वैतालिक्या: सकाशे वीणां शिक्षितुं नारदीयां गतासीत्।

55• मालविकाग्निमित्रम्, अंक 1 एवं अंक 2

56• मालविकाग्निमित्रम् अंक 5

57• प्रियदर्शिका अंक 2

58• प्रियदर्शिका अंक 3•10

59• अभिज्ञान शाकुन्तलम् अंक 6

60• रत्नावली अंक 2

61• नागानन्द, अंक 1

62• अविमारक नाटक, अंक 1•5

63• प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अंक 1

64· अर्थशास्त्र 1·3·7

65· वही 1·5·9

66· वही 1·5·9

67· मनुस्मृति 7·54

68· कामन्दक नीतिसार 5·21-23

69· अर्थशास्त्र 1·3·7

70· कामन्दकनीतिसार 5·20·25

71· अर्थशास्त्र 1·10·14

72· कामन्दक नीतिसार 11·44

73· सरकार, डी0सी0 पूर्वोद्धरित पृष्ठ 180

74· राय ,यू0 एन0 पूर्वोद्धरित पृष्ठ 244-45

75· प्रतिज्ञायौगन्धरायण अंक,1, स्वप्नवासवदत्तम् अंक 1

76· प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अंक 1·14

77· प्रतिज्ञा यौगन्धरायण, अंक 1·16

78· अविमारक नाटक अंक 1·5

79· मुद्राराक्षस, अंक 1·25,अंक 3·15

80· मुद्राराक्षस अंक 1, अंक 2·10, 2·20,2·22

81· अभिज्ञान शाकुन्तलम् अंक 6

मद्वचनादुच्यतामार्य पिशुनं ब्रूहि, चिरप्रबोधान्न सम्भावितमस्माभिरद्य धर्मासनमध्यासितुम,
यत्प्रत्यवेक्षतं पौर कार्यमार्येण तत्पत्रमारोप्य दीयतामिति ।

82· मालविकाग्निमित्रम्,अंक 1·

83· मुद्राराक्षस, अंक 2

84· मालविकाग्निमित्रम्, अंक 2

85· अविमारक, अंक 1

86· मुद्राराक्षस, अंक 3

87· अर्थशास्त्र 1·1·15

88• महाभारत (शान्तिपर्व) 85•7-10

89• कामन्दक नीतिसार 4•31.

90• प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अंक 1

91• मालविकाग्निमित्रम्, अंक 5

92• कूलबर्न रस्टन फ्यूडलिज्म इन हिस्ट्री प्रिंस्टन युनिवर्सिटी प्रेस, 1956 पृष्ठ 4
ब्लाक, मार्क फ्यूडल सोसाइटी, भाग 1 लंदन, 1965, पृष्ठ 443-44

93• शर्मा, आर एस0 इंडियन फ्यूडलिज्म, कलकत्ता,
1765 पृष्ठ 1-8

94• अर्थशास्त्र 1•5•9, 1•8•12

95• मनुस्मृति 8•258

96• रघुवंश 5•23,5•33

97• राय, यू0एन0 पूर्वोद्धरित पृष्ठ 114-15

98• सरकार, डी0सी0 पूर्वोद्धरित पृष्ठ 343

99• शर्मा, आर0एस0 पूर्वोद्धरित पृष्ठ 10

100• राय चौधरी, एच0सी0 पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑव
एंश्यन्ट इंडिया, 1953 परिशिष्ट डी

101• शर्मा, आर0एस0 पूर्वोद्धरित पृष्ठ 20

102• शर्मा, आर0एस0 अर्बन डिके इन इंडिया
दिल्ली 1987 पृष्ठ 1-9

103• शर्मा आर0एस0 (1987) पूर्वोद्धरित पृष्ठ 10

104• शर्मा आर0एस0 (1965) पूर्वोद्धरित पृष्ठ 25

105• शर्मा, आर0एस0 (1987) पूर्वोद्धरित 10-12

106• विक्रमोर्वशीयम्, अंक 3•19

107• मुद्राराक्षस, अंक 1

108• अविमारकनाटक अंक 1,3,5• प्रतिज्ञा यौगन्धरायण, अंक 1;2,4

109• प्रतिमानाटक, अंक 1, 3, 4

110• मृच्छकटिक, अंक 5

111• वही, अंक 3

112• दूत घटोत्कच, अंक 1

113• मुद्राराक्षस, अंक 2

114• अभिज्ञान शाकुन्तलम्, अंक 6

116• मृच्छकटिक, अंक 6

117• वही, अंक 6

118• मुद्राराक्षस अंक 7

119• वही अंक 1 मृच्छकटिक, अंक 9

120• मुद्राराक्षस अंक 1•20

121• मृच्छकटिक, अंक 7•1

तरुणिजन इव भान्ति तरवः पण्यानीव स्थितानि कुसुमानि
शुल्कमिव साध्यन्ते मधुकर पुरुषाः प्रविचरन्ति ।।

122• प्रतिज्ञायौगन्धरायण अंक 3

मुद्राराक्षस, अंक 1,2,3,4,5

123• प्रतिज्ञा यौगन्धरायण अंक 1, अभिज्ञानशाकुन्तलम् अं 2

124• प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अंक 1, एवं 4

125• मुद्राराक्षस अंक 1

126• राय, यू०एन० पूर्वोद्धरित पृष्ठ 333

127• मृच्छकटिक अंक 5

128• अभिज्ञान शाकुन्तलम् अंक 5

129• मृच्छकटिक अंक 9

130• वही, अंक 9

131• मृच्छकटिक अंक 9•5

शास्त्रज्ञः कपटानुसार कुशलो, वक्ता न च क्रोधन -
स्तुल्यो मित्रपरस्वकेषु चरितं दृष्ट्वैव दत्तोत्तरः ।
क्लीबान् पालयिता, शठान व्यथयिता , धर्म्यो न लोभान्वितो-
द्वार्भावे परतत्त्वबद्धहृदयो, राज्ञश्च कोपापहः ।।

132· मृच्छकटिक अंक 8

133· वही, अंक 9

134· वही, अंक 9

135· वही, अंक 9

136· वही, अंक 9 गृहंगेतेति लिख्यतां व्यवहारस्य प्रथम: पाद: ।

137· मृच्छकटिक अंक 9·21

वेदान्प्राकृतस्त्वत्वं वदसि ·············।

138· मृच्छकटिक अंक 9·40

विषसलिलतुलाग्नि प्रार्थितं मे विचारे ।

139· मृच्छकटिक अंक 10

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(अ) मूल ग्रन्थ

ग्रन्थ	विवरण
अभिज्ञान शाकुन्तलम्	सम्पादक शारदा रंजन रे कलकत्ता 1908
अष्टाध्यायी	सम्पादक एस0सी0 बसु, दिल्ली 1962
अर्थशास्त्र	आर0पी0 कांगले, 1969 आर0शामशास्त्री, मैसूर 1909 वाचस्पति गैरोला, वाराणसी, 1977
अभिषेक नाटकम्	सम्पादक-मोहनदेव पंत मोतीलाल बनारसीदास, बनारस 1960
अमरकोश	संपादक-एच0डी0 शर्मा एवं जी0एन0 शेषाद्रि, पूना 1941
अविमारक	सम्पादक टी0गणपतिशास्त्री, त्रिवेन्द्रम,1912-1915
उत्तर रामचरितम्:	सम्पादक पी0वी0काणे, तृतीय संस्करण बम्बई, 1929
उरुभंग	संपादक टी गणपति शास्त्री त्रिवेन्द्रम 1912
ऋग्वेद	संपादक सातवलेकर , सतारा 1940
ऋतुसंहार	संपादक [illegible] लक्ष्मण शास्त्री, निर्णय सागर प्रेस 1922
कादम्बरी	सम्पादक :मोहनदेव पंत, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी 1980
कुमारसंभव	संपादक: भारद्वाज; गंगाधर शास्त्री बनारस द्वितीय संस्करण

कामन्दकीय नीतिसार: 2·20 सम्पादक जे0पी0 विद्यासागर, कलकत्ता, 1975, अनुवादक, एम0एन0दत्त कलकत्ता 1876

कौटिल्य का अर्थशास्त्र, सम्पादक और अनुवादक आर0शाम0 शास्त्री, अष्टम् संस्करण 1967

कर्णभार सम्पादक: रमाशंकर त्रिपाठी, प्रकाशक मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी 1970

गौतम धर्म सूत्र हरदत्त टीका सहित, आनन्दाश्रम, संस्कृत, सीरीज 1910

चारुदत्तम् सम्पादक गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम 1914

दशकुमार चरितम् सम्पादक काले एम0आर बम्बई, 1917

दूत घटोत्कच सम्पादक रमाशंकर त्रिपाठी मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली 1975

दूत वाक्यम् सम्पादक रमाशंकर त्रिपाठी मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1976

नारद स्मृति सम्पादक जोली, कलकत्ता 1885

नागानंद सम्पादक बलदेव उपाध्याय चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी 1986

नाट्यशास्त्र भरतमुनि कृत (अभिनवगुप्त की टीका सहित) एम0आर0 कवि, जिल्द 1-3 बड़ौदा 1926-1954

पंचरात्र	सम्पादक टी0गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम्, 1915
प्रतिमानाटकम्	संपादक श्री धरानंद शास्त्री मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली 1975
प्रतिज्ञा यौगन्धरायण	संपादक टी गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम , 1912
प्रसन्न राघव	सम्पादक रमाशंकर त्रिपाठी मोतीलाल बनारसीदास, बनारस, दिल्ली 1970
प्रियदर्शिका	संपादक श्री रामचन्द्र मिश्र चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी 1976
बालचरित	सम्पादक टी0गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम्, 1915
बृहत्संहिता	सम्पादक -सुधाकर द्विवेदी बनारस 1985
मृच्छकटिक	सम्पादक आर0डी0 करमारकर, पूना 1937
मध्यमव्यायोग	सम्पादक टी0 गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम 1912
मनुस्मृति	वी0एन0 माण्डलिक बम्बई 1986 मेधातिथि की टीका सहित कलकत्ता 1932 [सम्पादक/अनुवादक] जार्ज ब्यूलर दि लॉज ऑव मनु सेक्रेड बुक्स ऑव दि ईस्ट सीरीज
महाभाष्य	सम्पादक गुरुप्रसाद शास्त्री, बनारस एफ कील हार्न, महाभाष्य ऑव पतन्जलि [हि0 सं0] 30 खण्ड 1892-1907
महावीरचरित [भवभूति]	संपादक सत्यव्रत विद्यालंकार, वाराणसी , 1975
महाभारत	पूना 1927 एवं उसके आगे गोरखपुर 1955-58 अनुवाद पी0सी0राय कलकत्ता 1925

मालती माधव (भवभूति कृत) संपादक महामहोपाध्याय के०एस० महादेवशास्त्री अनंतशयन विश्वविद्यालय, ट्रावनकोर 1953

मालविकाग्निमित्रम् संपादक पी०एस० साणे एवं जी० गोड, कोले बम्बई 1950

मुद्राराक्षस (विशाखदत्त कृत) संपादक आर०डी० करमाकर पूना 1940

याज्ञवल्क्य स्मृति सम्पादक नारायण शास्त्री चौखम्भा, संस्कृत सीरीज बनारस 1980

रघुवंश सम्पादक शंकर पण्डित, प्रकाशक गवर्नमेन्ट सेन्ट्रल बुक डिपो 1987

रत्नावली सम्पादक बैजनाथ पाण्डेय, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली 1980

रामायण (वाल्मीकिकृत) गीता प्रेस गोरखपुर 1967

विक्रमोर्वशीयम् संपादक रामाभिलाष त्रिपाठी मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली 1980

शारिपुत्र प्रकरण बुद्धिस्ट संस्कृत टेक्स्ट दरभंगा, 195[illegible]

(ब) शब्दकोश

कामिल बुल्के	अंग्रेजी-हिन्दी कोश कैथोलिक प्रेस, रांची 1974
मलालशेखर जी०पी०	ए डिक्शनरी ऑव पालिप्रापरनेम्स 2 खण्ड लंदन 1937-38
मॉनियर-विलियम्स	ए संस्कृत इंगिलश डिक्शनरी, ऑक्सफोर्ड 1951
रॉथ, रूडोल्फ एण्ड बोथलिंग, ओटो, सेंट पीटर्सबर्ग	डिक्शनरी खण्ड 1-7 सेंटपीटर्सबर्ग 1855-1875
रीज डेविड्स, टी० डब्ल्यु एण्ड डब्ल्यु स्टेड	पालि-इंगिलश डिक्शनरी पालि टेक्स्ट सोसाइटी लंदन 1921
रामचन्द्र वर्मा	मानक हिन्दी कोश हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग 1973

(स) सहायक-ग्रन्थ

अग्रवाल, वासुदेव शरण — पाणिनिकालीन भारतवर्ष (द्वितीय संस्करण) वाराणसी 1969

हर्षचरित: एक सांस्कृतिक अध्ययन द्वितीय संस्करण पटना 1964

भारतीय कला, (द्वितीय संस्कृत) वाराणसी, 1987

अल्तेकर, ए०एस० — केटालॉग ऑव दि गुप्ता गोल्ड क्वायन्स इन दि बयाना होर्ड बम्बई 1954

एजूकेशन इन ऐंश्यन्ट इंडिया वाराणसी 1950

दि पोजीशन ऑव दि वीमैन इन हिन्दू सिविलाइजेशन बनारस 1938

आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इंडिया एन्युअल रिपोर्ट 1911-12 दिल्ली

अग्निहोत्री, प्रभुदयाल- — पतंजलि कालीन भारत, पटना विक्रमाब्द 2016

आद्या, जी०एल० — अर्ली इंडियन इकोनामिक बम्बई 1966

इन्द्रपाल सिंह, इन्द्र — संस्कृत नाटक समीक्षा, वाराणसी 1960

उपाध्याय, जी0पी0 — ब्राह्मणाज इन एंशयंट इण्डिया, नई दिल्ली, 1976

एलन, जॉन — केटालॉग आव दि क्वायन्स ऑव दि गुप्ता डाइनेस्टी, लंदन 1914

ओझा, रायबहादुर गौरीशंकर — मध्कालीन भारतीय संस्कृति इलाहाबाद 1953

काणे, पी0बी0 — धर्मशास्त्र का इतिहास (अनुवादक) अर्जुन चौबे काश्यप, लखनऊ 1973

कुमारस्वामी, ए0के0 — दि इंडियन क्राफ्टमैन, लन्दन, 1909

क्रेमरिश, स्टेला — इंडियन स्कल्पचर्स (प्रथम भारतीय पुनर्मुद्रण) दिल्ली 1981

कापाडिया, एच0आर0 — जैन रेलिजन एण्ड लिटरेचर, वाराणसी 1970

काला, सतीशचन्द्र — टेराकोटा फिंगरिंस फ्राम कौशाम्बी, इलाहाबाद 1950

<u>टेराकोटाज इन द इलाहाबाद म्यूजियम</u> नई दिल्ली, 1980

कीथ, ए0बी0 — संस्कृत नाटक दिल्ली, 1965 हिन्दी अनुवादक उदयभानु सिंह

कूलवर्न, रस्टन	फ्यूडलिज्म इन हिस्ट्री प्रिंस युनि0 प्रेस 1956
कोसाम्बी डी0डी0	दि कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन ऑव ऐंश्यन्ट इंडिया इन हिस्टारिकल आउटलाइन लंदन, 1965
	एन इन्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी ऑव इंडियन हिस्ट्री बम्बई, 1956
	इंडियन हिस्ट्री कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन, ए हिस्टारिकल आउटलाइन (चतुर्थ संस्करण) 1976
	प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता एक ऐतिहासिक रूपरेखा (हिन्दी अनुवाद) नई दिल्ली 1977
गोपाल, लल्लनजी	इकोनामिक लाइन ऑव नार्दन इंडिया, वाराणसी, 1965
गौर, आर0सी0	एक्सकेवेशन्स एट अतरंजीखेड़ा, दिल्ली, 1983
गुप्त मानिकचन्द्र	बीड्स फ्राम कौशाम्बी, इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी0फिल उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, 1992
गुप्त, परमेश्वरीलाल	गुप्त साम्राज्य , वाराणसी 1970
घोष, ए0	दि सिटी इन अर्ली हिस्टारिकल इंडिया, शिमला, 1973

चक्रवर्ती, एच0पी0 — ट्रेड एंड कामर्स ऑव एंशयंट इंडिया ‍़200 ई0 पू0 650 ईसवी‍़ कलकत्ता, 1967

चार्ल्स, बर्थ — रोमन ट्रेड विद इंडिया: ए रिसर्वे पी0आर कोलमन नोर्टन ‍़सं0‍़ स्टडीज इन रोमनइकोनोमिक एंड सोशल हिस्ट्री इन आनर ऑव एलन चेस्टर जानसन प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस 1951

जयकुमार जलज — संस्कृत नाट्यशास्त्र,:एक पुनर्विचार, वाराणसी, 1962

जैनी, जे0आई — आउटन लाइन्स ऑव जैनिज्म, बड़ौदा, 1965

जायसवाल के0पी0 — हिन्दू पॉलिटी, बंगलोर ,1943

जैन कैलाशचन्द्र — प्राचीन भारत में सामाजिक एवं आर्थक संस्थाएं, मध्य प्रदेश अकादमी, भोपाल ‍़तृतीय संस्करण‍़, 1976

जैन, जे0सी0 — लाइफ इन एंशयंट इंडिया एरज डेपिक्टेड इन दि जैन कैनॅन्स, बम्बई, 1947

जोशी, एन0पी0 — मथुरा स्कल्पचर्स, मथुरा, 1977

ठाकुर, विजय कुमार — अर्बनाइजेशन इन एंशयंट इंडिया नयी, दिल्ली, 1981

थापर, रोमिला — अशोक तथा मौर्य साम्राज्य का पतन, नई दिल्ली 1977
ऐंशयंट इंडिया सोशल हिस्ट्री, दिल्ली, 1978

थपल्याल, के0के0 — इंस्क्रिप्शन्स आँव दि मौखरीज, लेटर गुप्ताज पुष्यभूति एंड यशोवर्मन आँव दि कन्नौज, दिल्ली, 1985

द्विवेदी, हजारी प्रसाद — भारतीय नाट्यशास्त्र की परम्परा और दशरूपक, वाराणसी, 1963

द्विवेदी, रेवा प्रसाद — कालिदास ग्रन्थावली वाराणसी 1976

दीक्षित, एम0जी0 — "बीड्स फ्राम अहिच्छत्रा यू0पी0 "ऐंशयन्ट इंडिया नं0 8

नारायण, ए0के0 एण्ड पी0 सिंह — एक्सकेवेशंस एट राजघाट पार्ट III वाराणसी, 1977

निगम, एस0एस0 — इकोनामिक आर्गनाइजेशन इन ऐंशयंट इंडिया, दिल्ली, 1975

नियोगी, पी0 — द इकोनामिक हिस्ट्री आँव नोर्दन इंडिया, कलकत्ता, 1962

पाण्डेय, गोविन्दचन्द्र — बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास (द्वि0सं0), लखनऊ, 1963

पाण्डेय, चन्द्रभान — आन्ध्र सातवाहन, साम्राज्य का इतिहास (प्र0सं0) 1963

पाण्डेय, जे0 एन0 — पुरातत्व विमर्श, इलाहाबाद, 1983
भारतीय कला एवं पुरातत्व, इलाहाबाद ,1989

पुरी, बी0एन0 — इंडिया अंडर कुषाण बम्बई, 1965
इंडिया इन दि टाइम्स ऑव पतंजलि, बम्बई, 1957
इंडिया एज डिस्क्राइब्ड, बाई अर्ली ग्रीक राइटर्स, इलाहाबाद, 1939
ट्रेड गिल्ड्स इन संस्कृत बुद्धिस्ट लिटरेचर (आई0सी0 वोल्ड)

पुसालकर, ए0डी0 — भास -ए स्टडी लाहौर 1940

फोगेल, जे0पी0 — केटालॉग ऑव दि आर्किऑलाजिकल म्यूजियम एट मथुरा ,इलाहाबाद, 1910

फ्लीट, जे0एफ0 — कार्पस इंस्क्रिपशनम इंडिकेरस जिल्द 3 लंदन, 1888

ब्लाक्मार्क — फ्यूडल सोसाइटी भाग 11 लंदन 1965

बनर्जी, एन0आर0 आयरन एज इन इंडिया मुंशीराम मनोहरलाल दिल्ली 1965

बील, एस0 — दि बुद्धिस्ट रिकार्ड्स ऑव दि वेस्टर्न वर्ल्ड लंदन 1914

ब्राउन पर्सी — इंडियन आर्किटेक्चर (षष्ठ संस्करण) बम्बई 1971

बसु, जोगिराज — इंडिया ऑव दि एज आव दि ब्राहमणाज, कलकत्ता, 1969

बागले, नरेन्द्र — सोसाइटी एट दि टाइम ऑव बुद्दा, बम्बई, 1966

विंटरनित्स, एम0 — ए हिस्ट्री ऑव इंडियन लिटरेचर जिल्द 1-2 (द्वि0सं0) नई दिल्ली, 1972

भण्डारकर, आरजी0 — वैष्णव शैव एवं अन्य धर्म, अनुवादक,उमाशंकर व्यास वाराणसी 1978

भट्टाचार्या, एस0सी0 — सम आसपेक्टस ऑव इंडियन सोसाइटी द्वितीय शताब्दी ई0पू0 से चतुर्थ शताब्दी ईसवी कलकत्ता, 1978

मजूमदार, आर0सी0 — प्राचीन भारत में संघटित जीवन अनु0 के0डी0 बाजपेई आगर 1966
(सं0) द एज ऑव इम्पीरियल यूनिटी बम्बई 1960
हिन्दू कालोनीज इन द साउथ ईस्ट एशिया;
हिन्दू कालोनीज इन द फॉर ईस्ट कलकत्ता , 1944

मजूमदार,आर0सी0 — (सम्पादक) दि वैदिक एज लैदन, 1951

मजूमदार आर0सी0 — (सम्पादक) दि एज ऑव इम्पीरियल यूनिटी चतुर्थ संस्करण) बम्बई 1968

मजूमदार, बी०पी० — सोशियो इकोनामिक हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इंडिया कलकत्ता, 1960

मजूमदार एंड पुसालकर — [सं०] दि एज ऑव इम्पीरियल यूनिटी

मार्गबन्धु, सी० — आर्कलाजी ऑव सातवाहन-क्षत्रप टाइम्स दिल्ली 1985

मिराशी, वासुदेव विष्णु — वाकाटक राजवंश और उसके अभिलेख, वाराणसी, 1964

मोतीचन्द्र — सार्थवाह, पटना, 1953

भारतीय वेश-भूषा, वाराणसी, 1967

मिश्रा, आर०एन० — एन्शंट आर्टिस्ट एंड आर्टि एक्टिविटी, शिमला, 1975

मिश्र, सच्चिदानन्द — प्राचीन भारत में ग्राम एवं ग्राम्य जीवन, गोरखपुर 1984

मिश्र जयशंकर — प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पटना, 1983

मित्रा, देवला — बुद्धिस्ट मानुमेन्टस कलकत्ता, 1970

मुकर्जी, राधाकुमुद — हिन्दू सभ्यता बम्बई, 1955

एंशयन्ट इंडिया, इलाहाबाद, 1956

चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल [द्वितीय संस्करण] नयी दिल्ली, 1990

लोकल गवर्नमेन्ट इन एंशयन्ट इंडिया, आक्सफोर्ड, 1920

इंडियन शिपिंग एंड मेरीटाइम एन्टिविटीज आक्सफोर्ड, 1912

मुकर्जी, बी०एन०	दि इकोनॉमिक फैक्टर इन द कुषाण हिस्ट्री, कलकत्ता, 1976
मेहता, आर०एल०	दि बुद्धिस्ट इंडिया, बम्बई, 1939
मैग्डानल एवं कीथ	वैदिक इंडैक्स [अनु0] रामकुमार राय , वाराणसी, 1962
यादव, बी०एन०एस०	"सम एस्पेक्ट्स ऑव चैंजिग आर्डर इन इंडिया ड्यूरिंग शक कुषाण एज कुषाणस्टडीज, इलाहाबाद, 1968
रे, एस०सी०	स्टेटीग्रैफिक इविडेंस ऑव क्वायन्स इन इंडियन एक्सकेवेशंस एण्ड सम एलाइड इश्यूज, मोनोग्राफ नं0 5, वाराणसी, 1959
रे, निहार रंजन	मौर्य तथा मौर्योत्तर कला [हिन्दी अनुवाद] प्रथम संस्करण] नई दिल्ली 1979
रैप्सन, ई0जे0	कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इंडिया [पुनर्मुद्रित] दिल्ली, 1962

रोलैंड, बेंजामिन	दि आर्ट एंड आर्किटेक्चर आँव इंडिया (तृतीय संस्करण) हैरमंडवर्थ 1956
लेग्गे जेम्स	रिकार्डस आँव बुद्दिस्ट किंगडम, आक्सफोर्ड 1886
वरदाचारी, वी०	हिस्ट्री आँव संस्कृत लिटरेचर, मद्रास 1952
वाटर्स ,टी०	हुवेनसांग ट्रैवेल्स इन इंडिया, भाग 1 लंदन 1905
ह्वीलर, मार्टीमर	रोमनियांड द इंपीरियल फ्रंटियर्स, वेलिकन हार्मंडवर्थ, 1954
रालिन्सन, एच०जी०	ए कंसाइज हिस्ट्री आँव दि इंडियन पीपुल आक्सफोर्ड 1946
राय, टी०एन०	दि गैंगेज सिविलाइजेशन दिल्ली, 1983
राय, यू०एन०	प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, इलाहाबाद, 1965
	गुप्त राजवंश तथा उसका युग, इलाहाबाद 1977
राय, जयमाल	दि रूरल अरबन ईकोनामी एंड सोशल चैंज इन एंश्यंट इण्डिया, वाराणसी, 1974
राय, चौधरी, एच०सी०	पोलिटिकल हिस्ट्री आँव एंश्यंट इंडिया (षष्ट संस्करण) कलकत्ता, 1953

{श्रीमती} राज, भारती	प्राचीन भारत में सामाजिक गतिशीलता का अध्ययन इलाहाबाद, 1985
रामगोपाल	इंडिया ऑव वैदिक कल्पसूत्राज, दिल्ली, 1963
सरकार ,डी0सी0	सेलेक्ट इंस्क्रप्शन्स {द्वितीय संस्करण} कलकत्ता 1965
	अशोक के धर्मलेख {हिन्दी अनुवाद} जनार्दन भट्ट, प्रकाशन विभाग भारत सरकार, 1957
सरस्वती एस0के0	ए सर्वे ऑव इंडियन स्कल्पचर्स
सिन्हा, बी0पी0	पोस्ट -गुप्ता पॉलिटी कलकत्ता, 1992
शुक्ल, रामवर्ण	बाणभट्ट की कृतियों में प्रतिबिम्बित समाज एवं संस्कृति, डी0फिल0शोध प्रबन्ध, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, 1991
शर्मा, आर0एस0	एस्पेक्ट्स ऑव पॉलिटिकल आइडियाज एंड इंस्टीट्यूशन इन एंशंट इंडिया {द्वि0सं0} दिल्ली, 1968
	अर्बन डिके इन इंडिया {3000-600ईसवी} दिल्ली 1987
	स्टेजेज इन इंडियन इकोनॉमिक लाइट ऑन अर्ली इंडियन सोसायटी एंड इकोनॉमी बम्बई, 1966

शूद्रों का प्राचीन इतिहास,
दिल्ली ,1977

पर्सपेक्टिव्स इन सोशल एंड इकोनॉमिक हिस्ट्री
ऑव अर्ली इंडिया, {प्र०सं०}
नई दिल्ली, 1983

पूर्वकालीन समाज और अर्थव्यवस्था पर
प्रकाश {हिन्दी अनु०}
वाराणसी, 1978

प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था की विभिन्न अवस्थाएं
{हिन्दी अनुवाद}, वाराणसी,
1978।

प्राचीन भारत में भौतिक
प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएँ {हिन्दी अनुवाद}
नयी दिल्ली, 1990

शर्मा, आर०एस० पूर्व मध्य काल में सामाजिक
परिवर्तन दिल्ली, 1975
{हिन्दी अनुवाद}

मैटिरीयन कल्चर सोशल
फार्मेशन इन एंशयंट इंडिया,
{पुनर्मुद्रित सं०}, दिल्ली, 1985

सर्वे ऑव रिसर्च इन
इकोनॉमिक एंड सोशल
हिस्ट्री ऑव इंडिया,
दिल्ली, 1986

लाइट ऑन अर्ली
इंडियन सोसायटी एंड इकोनॉमी, बम्बई 1954।

शर्मा, जी0आर0 — एक्सकैवेशंस एट कौशाम्बी 1957-59, इलाहाबाद, 1960

कुषाण स्टडीज, इलाहाबाद, 1968

एक्सकैवेशन्स एट कौशाम्बी (1947-50) मेम्वायर्स ऑफ दि आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया नं0 74 दिल्ली, 1969

शर्मा, आर0पी0 — मथुरा, 1987

शास्त्री, के0 नीलकण्ठ — नन्दमौर्य युगीन भारत (हिन्दी अनु0)। बनारस, 1969

दि चोलाज, जिल्द 1 एवं 2 मद्रास, 1937

मौर्याज एंड सातवाहनाज, कलकत्ता, 1957

दि एज ऑफ नन्दाज एण्ड मौर्याज, दिल्ली, 1967

शास्त्री, हरिदत्त — अश्वघोष और उनका साहित्य, वाराणसी 1970

शाह, के0टी0 — ऐंश्यंट फाउन्डेशन्स ऑन इकोनॉमिक्स, बम्बई, 1954

त्रिपाठी, रामनरेश — प्राचीन भारतीय आर्थिक विचार (पु0सं0) इलाहाबाद, 1981

त्रिपाठी• रमाशंकर हिस्ट्री ऑव कन्नौज
वाराणसी, 1937

शोध पत्र तथा पत्रिकाएं

आर्किलाजिकल सर्वे ऑव इंडिया एन्युअल रिपोर्ट , कलकत्ता ,1929
आर्किलाजिकल सर्वे ऑव इंडिया, रिपोर्ट्स ,दिल्ली
आर्थिक जगत, कलकत्ता
इंडियन हिस्टारिकल रिव्यू, आई0सी0एच आर0,दिल्ली ,
इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, कलकत्ता
इंडियन आर्कियालाजी- ए रिव्यू
एंश्यंट इंडिया, दिल्ली
एनल्स ऑव दि भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च , इंस्टीट्यूट पूना
एनुअल रिपोर्ट ऑव दि आर्किआलाजिकल सर्वे-ऑव इंडिया
एपिग्राफिया इंडिका
एंटीक्विटी, लंदन
जर्नल ऑव इंडियन सोसायटी ऑव ओरियण्टल आर्ट
जर्नल ऑव न्यूमिस्मैटिक सोसायटी ऑव इंडिया, वाराणसी
जर्नल ऑव इकोनॉमिक एंड सोशल हिस्ट्री ऑव दि ओरियण्टल, लन्दन
जर्नल ऑव रायल एशियाटिक सोसायटी, लन्दन
जर्नल ऑव एशियाटिक सोसायटी ऑव बंगाल
जर्नल ऑव दि गंगा नाथ झा रिसर्च इंस्टीट्यूट, इलाहाबाद
जर्नल ऑव यू0पी0 हिस्टारिकल सोसायटी, लखनऊ
जर्नल ऑव बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी
जर्नल ऑव बिहार रिसर्च सोसायटी ,पटना

जर्नल ऑफ बाम्बे ब्रांच ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी, बम्बई
जर्नल ऑफ द ईश्वरीय प्रसाद इंस्टीट्यूट ऑफ हिस्ट्री
युनिवर्सिटी ऑफ इलाहाबाद-स्टडीज
प्रोसीडिंग ऑफ इंडियन हिस्ट्री कॉंग्रेस